अमर चित्र कथा

श्री रामकृष्ण

संख्या ५१५ | रु.१०

www.amarchitrakatha.com

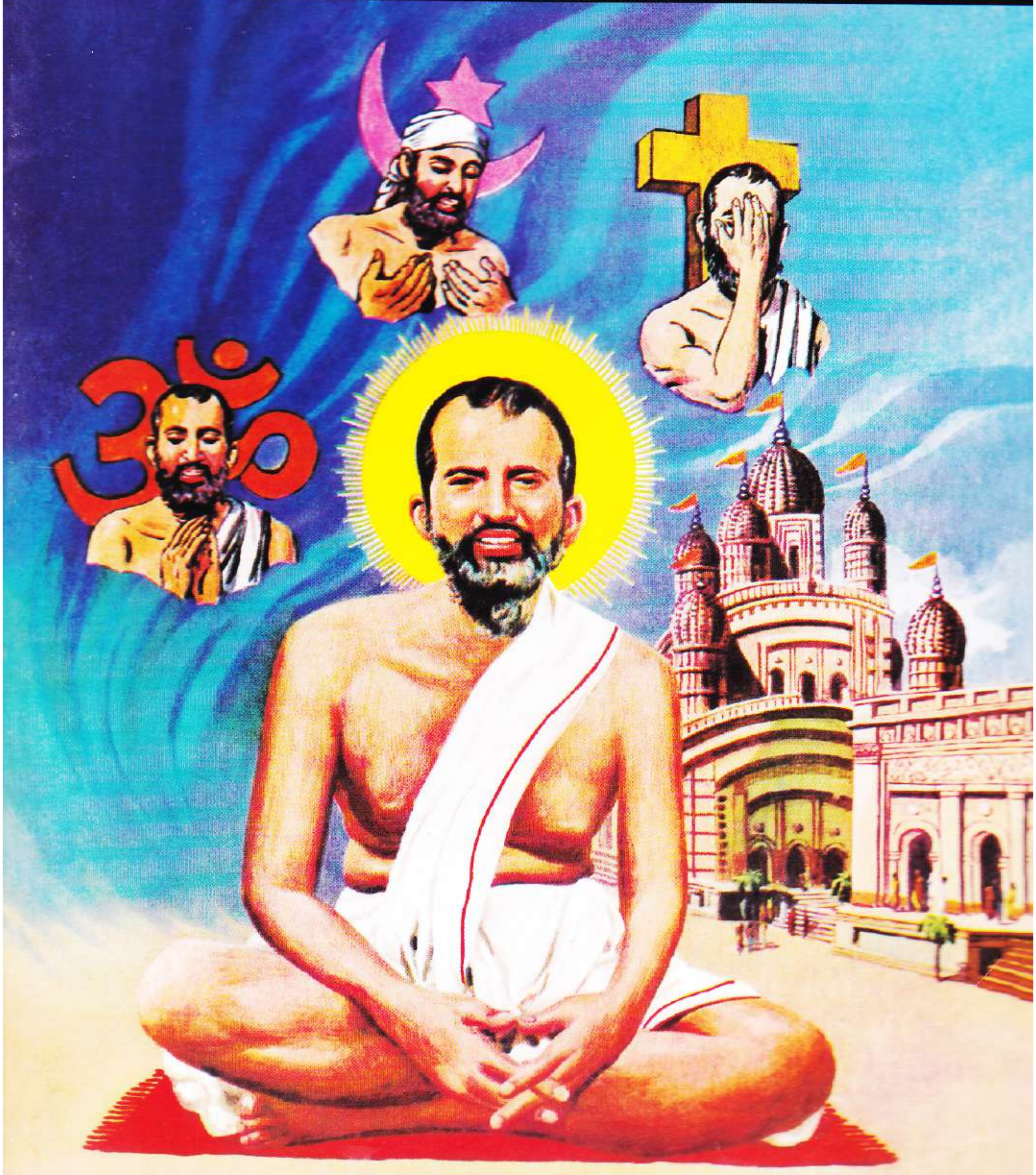

तलाश अपनी जड़ों की

जब वे मुड़ कर अपने बचपन के उन दिनों की ओर देखते हैं, जब उनके व्यक्तित्त्व का विकास हो रहा था, तब अनेक भारतीय बड़े स्नेह से अमर चित्र कथा की उन सचित्र पुस्तकों को याद करते हैं, जिन्होंने उनके जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह एसीके – अमरचित्र कथा ही थीं जिन्होंने उन्हें अपनी भव्य विरासत की पहली झलक दिखलाई थी।

अमर चित्र कथा १९६७ में पेश की गयीं। इस समय चुनने के लिए अमर चित्र कथा की ४०० से ज़्यादा पुस्तकें उपलब्ध हैं। संसारभर में इनकी ९ करोड़ से ज़्यादा प्रतियां बिक चुकी हैं।

अब अमर चित्र कथा की पुस्तकें और भी बड़े पैमाने पर उपलब्ध हैं – भारतभर में १०००+ पुस्तक विक्रेताओं के पास। अपने नज़दीकी विक्रेता का पता जानने के लिए यहां लॉग ऑन करें : www.ack-media.com. अगर किसी पुस्तक विक्रेता तक पहुंचना आसान न हो तो आप सभी पुस्तकें हमारे ऑनलाइन स्टोर www.amarchitrakatha.com से ख़रीद सकते हैं। हम संसारभर में हर जगह पुस्तकें बड़ी जल्दी पहुंचा देते हैं।

हमारे पुस्तकों के भंडार में से आपको अपनी मनपसंद पुस्तक चुनने में आसानी हो, इसके लिए हमने पुस्तकों को पांच वर्गों में विभाजित किया है।

महाकाव्य तथा धार्मिक कथाएं
महाकाव्यों एवं पुराणों की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

भारतीय साहित्य
भारतीय साहित्य की मनमोहक कहानियाँ

लोक कथाएं तथा हास्य कथाएं
सदाबहार लोक कथाएं, दंत कथाएं तथा विवेक और हास्य से भरी कहानियाँ

शूरवीर
वीर पुरुषों तथा महिलाओं की मन छूने वाली कहानियाँ

दूरदृष्टा
विचारकों, समाज सुधारकों तथा राष्ट्र निर्माताओं की प्रेरक कहानियाँ

समकालीन साहित्य
भारतीय समकालीन साहित्य की उत्कृष्ठ कहानियाँ

कथा गायत्री मदन दत्त

चित्र सोरेन रोय

संपादक अनंत पै

Amar Chitra Katha Pvt Ltd

© Amar Chitra Katha Pvt Ltd, 1982, Reprinted January 2022,
ISBN 978-81-8482-330-1
Published by Amar Chitra Katha Pvt. Ltd., 204, 2nd Floor, Dhantak Plaza, Makwana Road, Gamdevi, Marol, Andheri (East), Mumbai - 400059, India.
For Consumer Complaints Contact Tel : + 91-2249188881/2
Email: customerservice@ack-media.com
Printed in India

This book is sold subject to the condition that the publication may not be reproduced, stored in a retrieval system (including but not limited to computers, disks, external drives, electronic or digital devices, e-readers, websites), or transmitted in any form or by any means (including but not limited to cyclostyling, photocopying, docutech or other reprographic reproductions, mechanical, recording, electronic, digital versions) without the prior written permission of the publisher, nor be otherwise circulated in any form of binding or cover other than that in which it is published and without a similar condition being imposed on the subsequent purchaser.

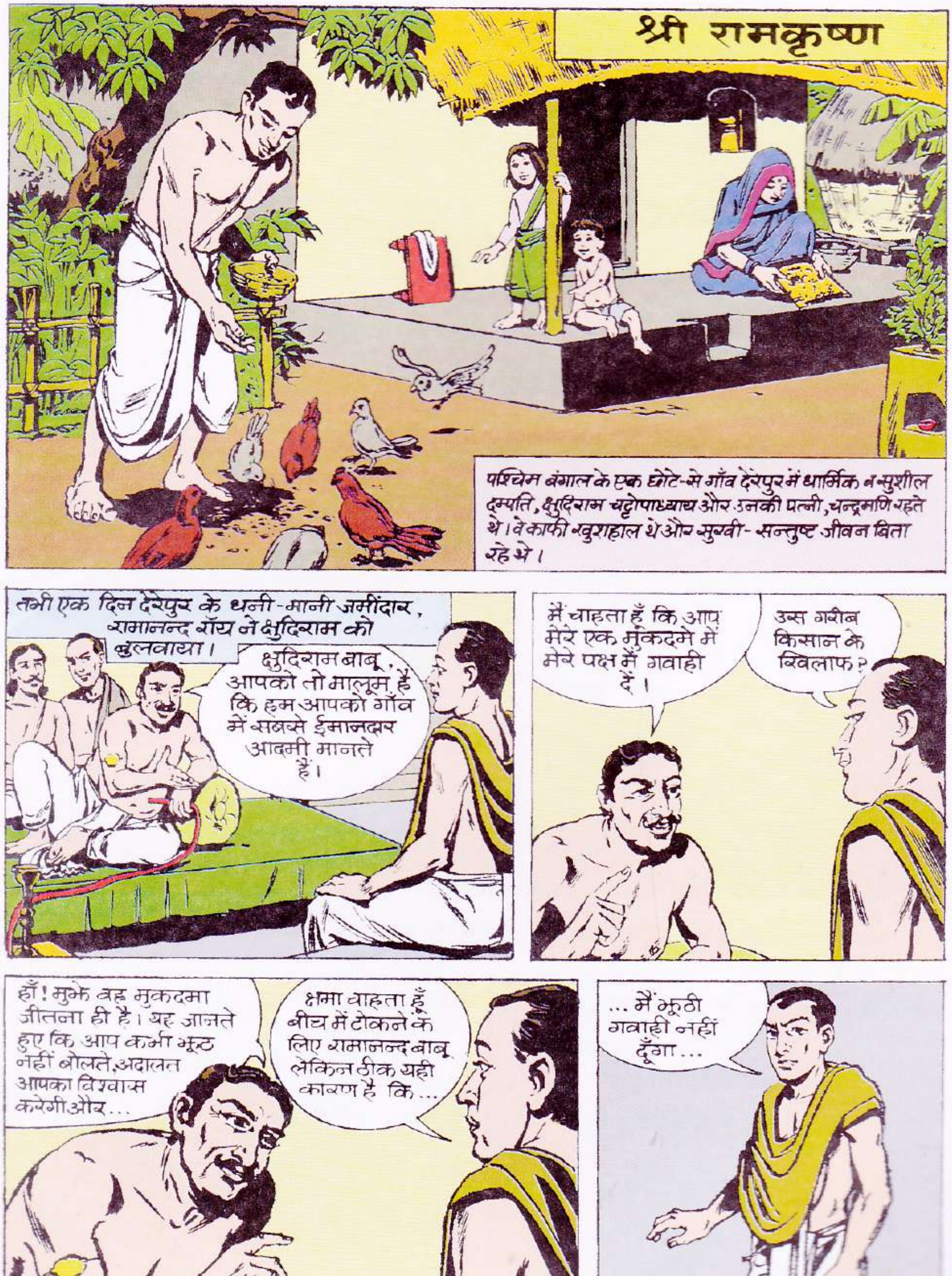

श्री रामकृष्ण
पश्चिम बंगाल के एक छोटे-से गाँव देरेपुर में धार्मिक व सुशील दम्पति, क्षुदिराम चट्टोपाध्याय और उनकी पत्नी, चन्द्रमणि रहते थे। वे काफी खुशहाल थे और सुखी - सन्तुष्ट जीवन बिता रहे थे।
तभी एक दिन देरेपुर के धनी-मानी जमींदार, रामानन्द रॉय ने क्षुदिराम को बुलवाया।
क्षुदिराम बाबू, आपको तो मालूम है कि हम आपको गाँव में सबसे ईमानदार आदमी मानते हैं।
मैं चाहता हूँ कि आप मेरे एक मुकदमे में मेरे पक्ष में गवाही दें।
उस गरीब किसान के खिलाफ?
हाँ! मुझे वह मुकदमा जीतना ही है। यह जानते हुए कि आप कभी झूठ नहीं बोलते, अदालत आपका विश्वास करेगी और...
क्षमा चाहता हूँ बीच में टोकने के लिए रामानन्द बाबू, लेकिन ठीक यही कारण है कि...
... मैं झूठी गवाही नहीं दूँगा...

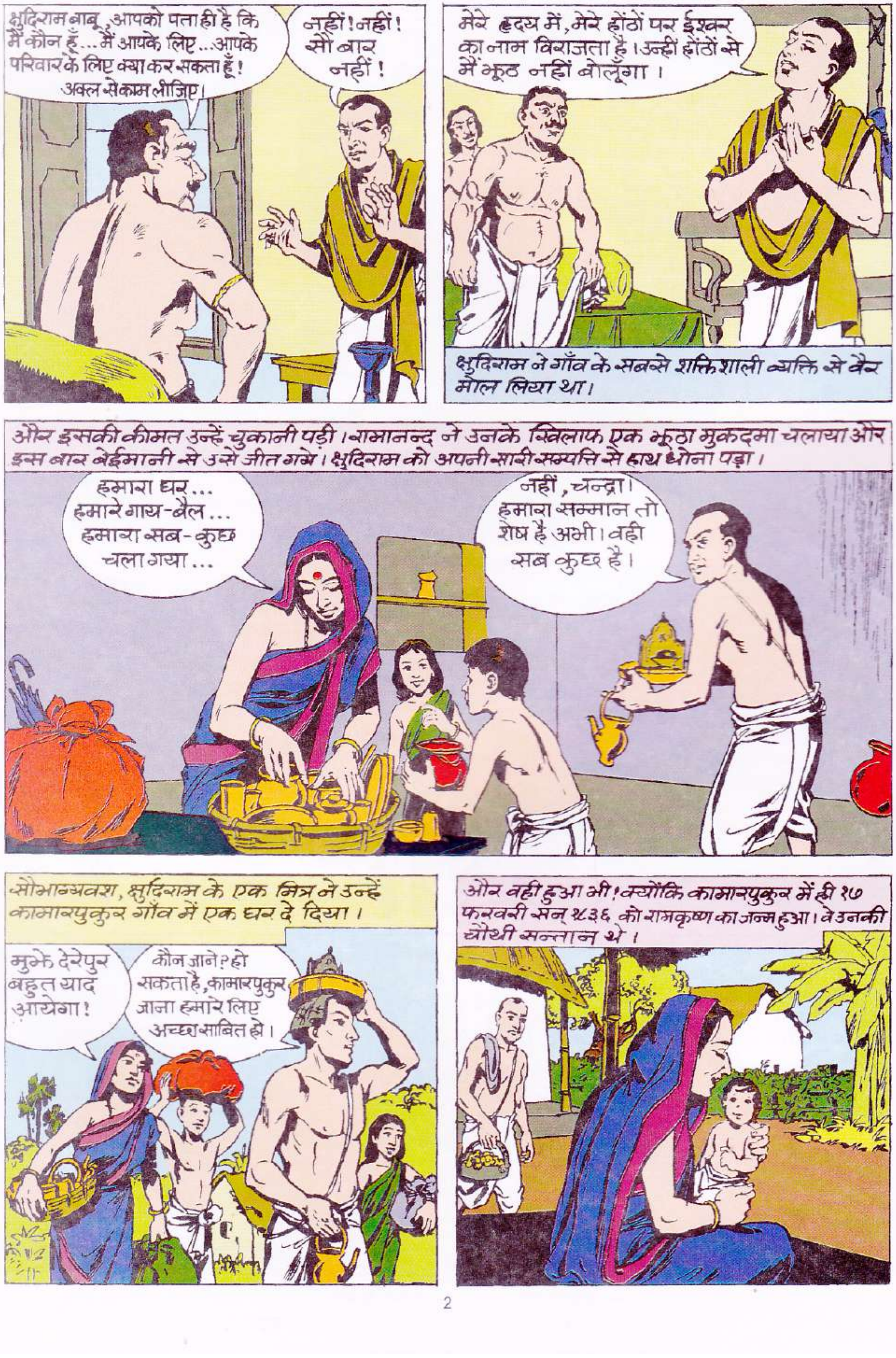
क्षुदिराम बाबू, आपको पता ही है कि मैं कौन हूँ... मैं आपके लिए... आपके परिवार के लिए क्या कर सकता हूँ!
अक्ल से काम लीजिए।
नहीं! नहीं! सौ बार नहीं!
मेरे हृदय में, मेरे होंठों पर ईश्वर का नाम विराजता है। उन्हीं होंठों से मैं झूठ नहीं बोलूँगा।
क्षुदिराम ने गाँव के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति से वैर मोल लिया था।
और इसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ी। रामानन्द ने उनके खिलाफ एक झूठा मुकदमा चलाया और इस बार बेईमानी से उसे जीत गये। क्षुदिराम को अपनी सारी सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ा।
हमारा घर... हमारे गाय-बैल... हमारा सब-कुछ चला गया...
नहीं, चन्द्रा। हमारा सम्मान तो शेष है अभी। वही सब कुछ है।
सौभाग्यवश, क्षुदिराम के एक मित्र ने उन्हें कामारपुकुर गाँव में एक घर दे दिया।
मुझे देरेपुर बहुत याद आयेगा!
कौन जाने? हो सकता है, कामारपुकुर जाना हमारे लिए अच्छा साबित हो।
और वही हुआ भी! क्योंकि कामारपुकुर में ही १७ फरवरी सन् १८३६ को रामकृष्ण का जन्म हुआ। वे उनकी चौथी सन्तान थे।

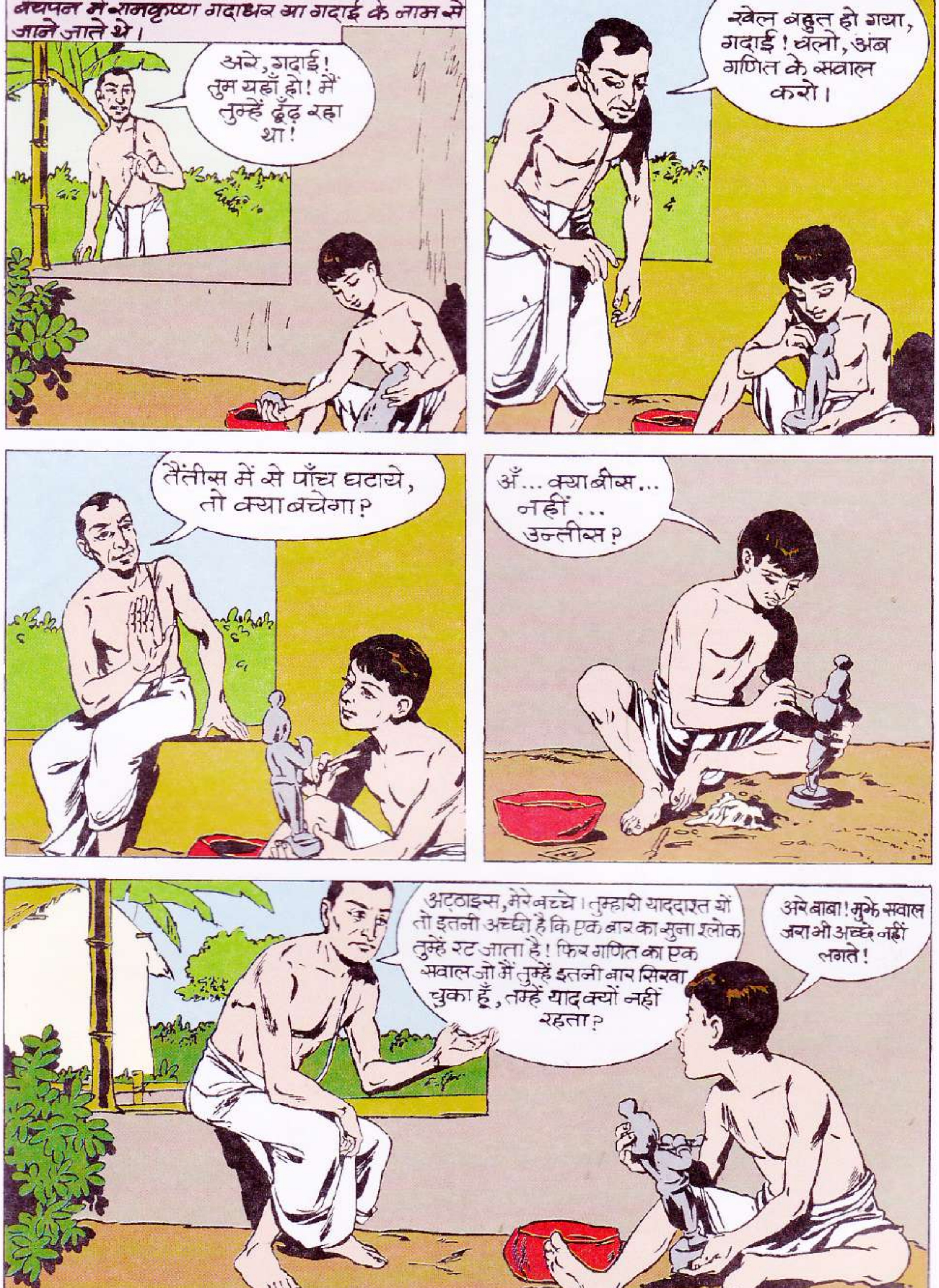
बचपन में रामकृष्ण गदाधर या गदाई के नाम से जाने जाते थे।
अरे, गदाई! तुम यहाँ हो! मैं तुम्हें ढूँढ़ रहा था!
खेल बहुत हो गया, गदाई! चलो, अब गणित के सवाल करो।
तैंतीस में से पाँच घटाये, तो क्या बचेगा?
अँ... क्या बीस... नहीं... उन्तीस?
अट्ठाइस, मेरे बच्चे। तुम्हारी याददाश्त यों तो इतनी अच्छी है कि एक बार का सुना श्लोक तुम्हें रट जाता है! फिर गणित का एक सवाल जो मैं तुम्हें इतनी बार सिखा चुका हूँ, तुम्हें याद क्यों नहीं रहता?
अरे बाबा! मुझे सवाल जरा भी अच्छे नहीं लगते!

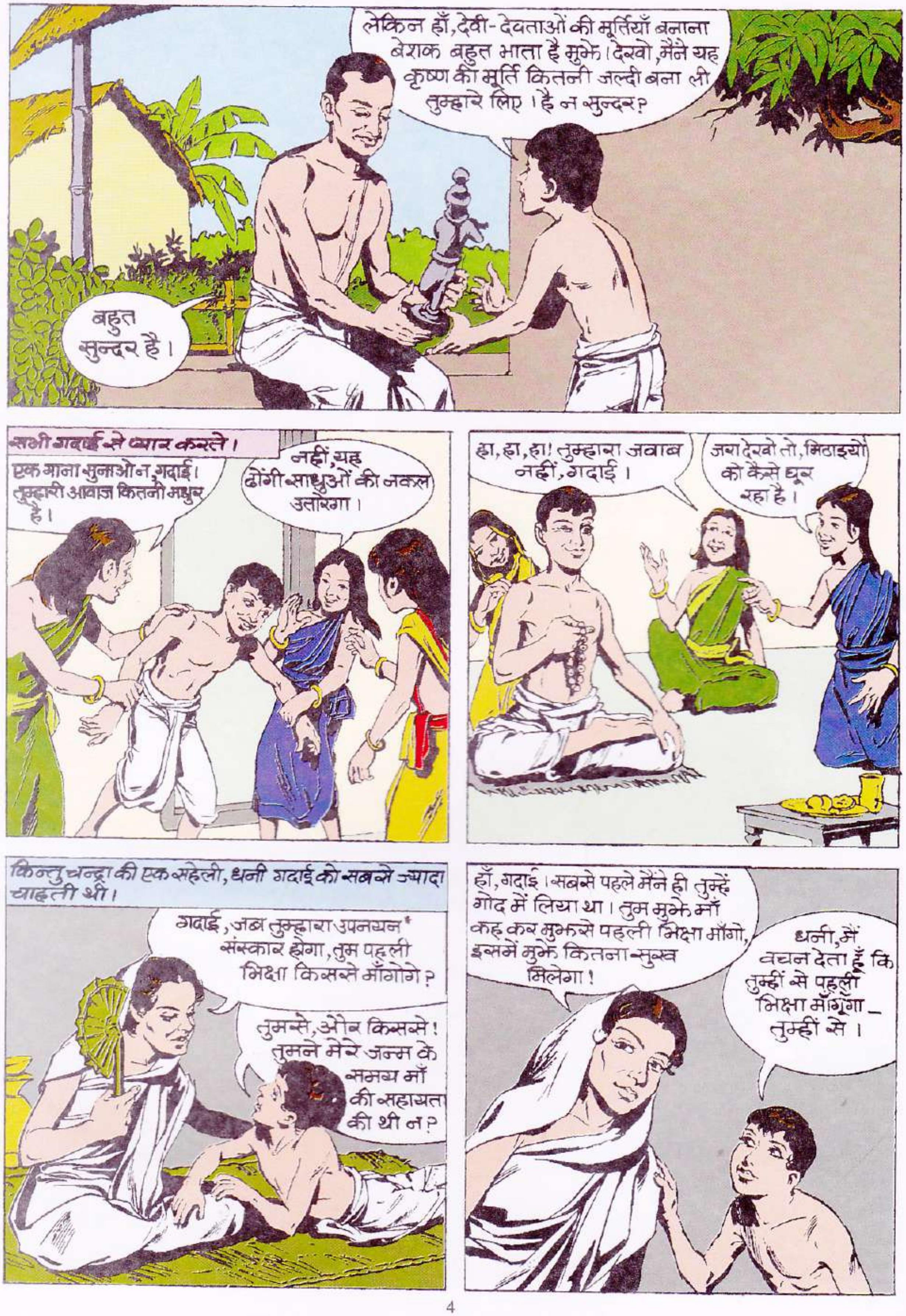
लेकिन हाँ, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाना बेशक बहुत भाता है मुझे। देखो, मैंने यह कृष्ण की मूर्ति कितनी जल्दी बना ली तुम्हारे लिए। है न सुन्दर?
बहुत सुन्दर है।
सभी गदाई से प्यार करते।
एक गाना सुनाओ न, गदाई। तुम्हारी आवाज कितनी मधुर है।
नहीं, यह ढोंगी साधुओं की नकल उतारेगा।
हा, हा, हा! तुम्हारा जवाब नहीं, गदाई।
जरा देखो तो, मिठाइयों को कैसे घूर रहा है।
किन्तु चन्द्रा की एक सहेली, धनी गदाई को सबसे ज्यादा चाहती थी।
गदाई, जब तुम्हारा उपनयन* संस्कार होगा, तुम पहली भिक्षा किससे माँगोगे?
तुमसे, और किससे! तुमने मेरे जन्म के समय माँ की सहायता की थी न?
हाँ, गदाई। सबसे पहले मैंने ही तुम्हें गोद में लिया था। तुम मुझे माँ कह कर मुझसे पहली भिक्षा माँगो, इसमें मुझे कितना सुख मिलेगा!
धनी, मैं वचन देता हूँ कि तुम्हीं से पहली भिक्षा माँगूँगा — तुम्हीं से।

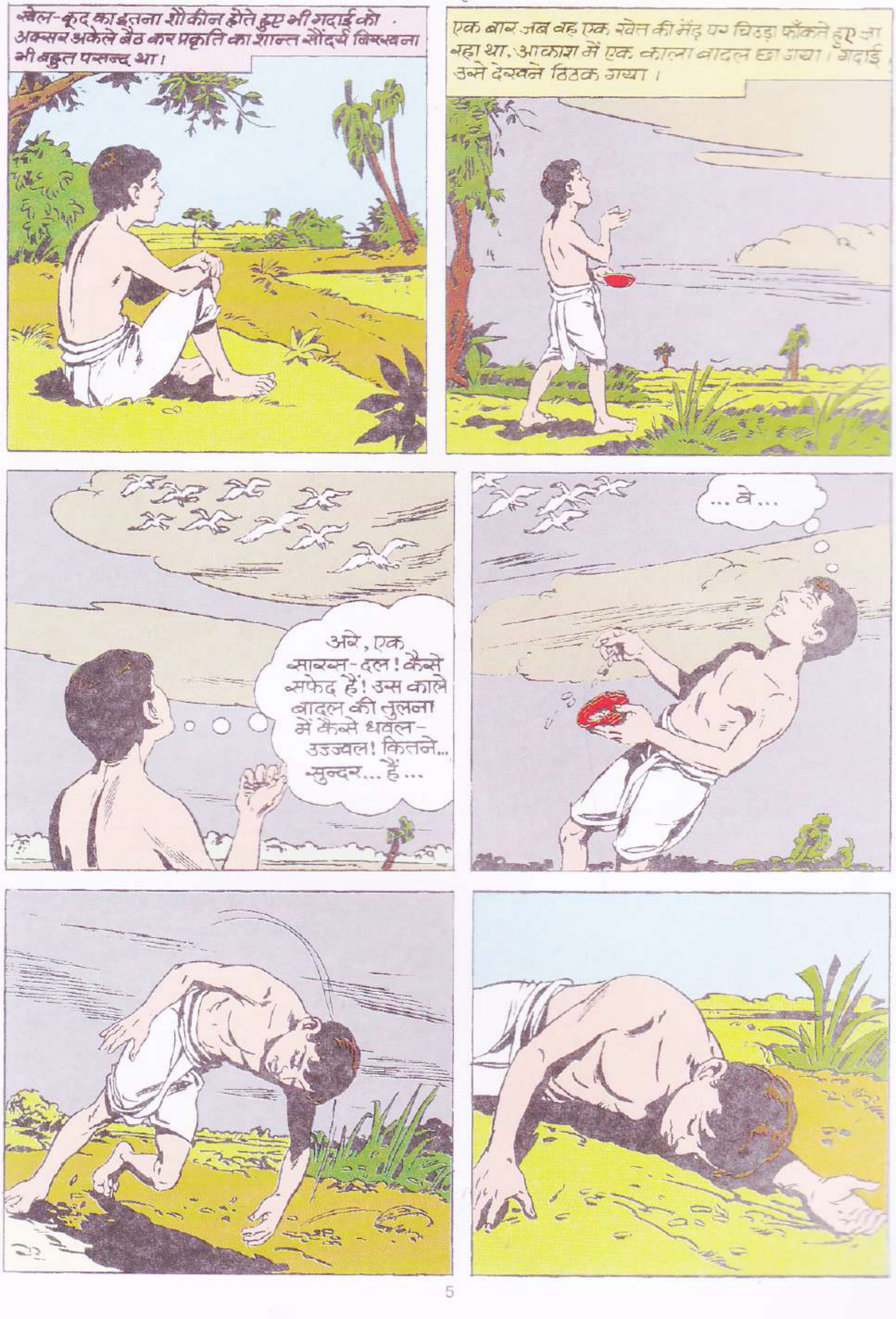
खेल-कूद का इतना शौकीन होते हुए भी गदाई को अक्सर अकेले बैठ कर प्रकृति का शान्त सौंदर्य निरखना भी बहुत पसन्द था।
एक बार जब वह एक खेत की मेंड़ पर चिउड़ा फाँकते हुए जा रहा था, आकाश में एक काला बादल छा गया। गदाई उसे देखते ठिठक गया।
अरे, एक सारस-दल! कैसे सफेद हैं! उस काले बादल की तुलना में कैसे धवल-उज्वल! कितने... सुन्दर... हैं...
... वे ...

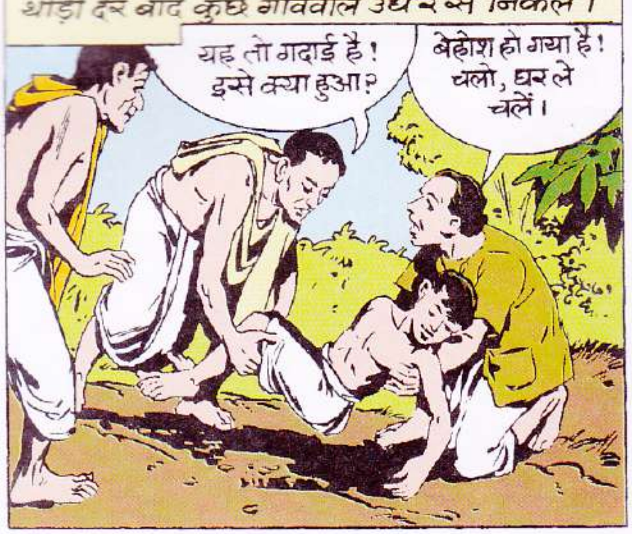
थोड़ी देर बाद कुछ गाँववाले उधर से निकले।
यह तो गदाई है! इसे क्या हुआ?
बेहोश हो गया है! चलो, घर ले चलें।

घर पर —
क्या हुआ, बेटा?
कुछ नहीं, माँ। मैंने कुछ सारस आसमान में उड़ते देखे। वे इतने सुन्दर थे, मैं ... मुझे लगा कि मैं अपने शरीर से बाहर चला गया हूँ... बड़ी दूर...। बहुत...बहुत...आनन्द आया, माँ। बस, इतनी-सी बात है।

और फिर एक दिन क्षुदिराम अचानक बीमार पड़ गये, और चल बसे। गदाई को अपने स्नेही पिता का अभाव दिन-रात खटकता।
वह गदाई ही है न?
हाँ! बेचारा बच्चा! कितना चुप और गुमसुम हो गया है!

कुछ समय बाद ही जब गदाई नौ वर्ष का हुआ उसका जनेऊ हुआ। पूजा के अन्त में —
तुम्हें तीन दिन तक भिक्षा माँगनी होगी। सबसे पहले किससे माँगोगे?
गदाई, मुझे दिया अपना वचन याद है तुम्हें?

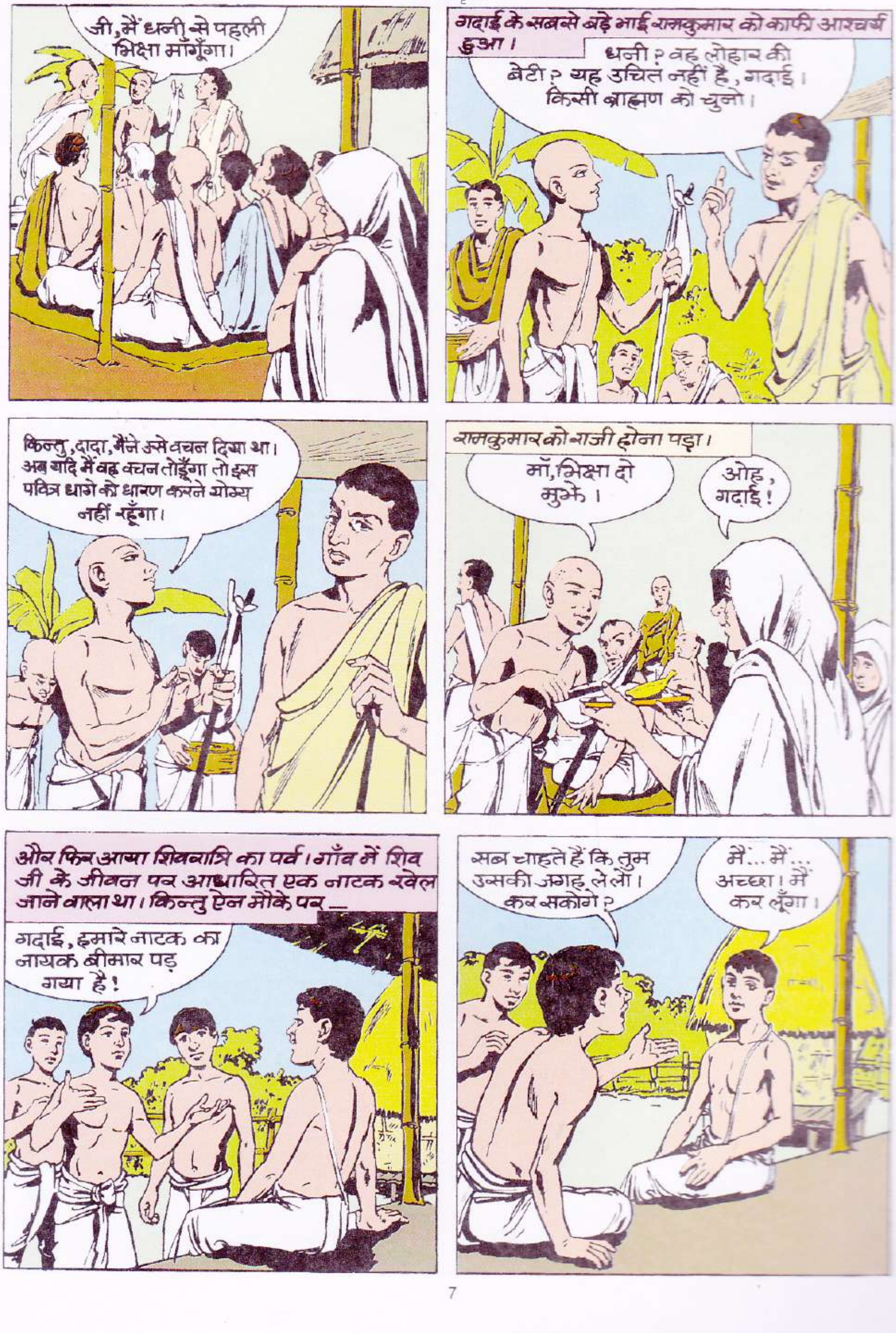
जी, मैं धनी से पहली भिक्षा माँगूँगा।
गदाई के सबसे बड़े भाई रामकुमार को काफी आश्चर्य हुआ।
धनी? वह लोहार की बेटी? यह उचित नहीं है, गदाई। किसी ब्राह्मण को चुनो।
किन्तु, दादा, मैंने उसे वचन दिया था। अब यदि मैं वह वचन तोड़ूँगा तो इस पवित्र धागे को धारण करने योग्य नहीं रहूँगा।
रामकुमार को राजी होना पड़ा।
माँ, भिक्षा दो मुझे।
ओह, गदाई!
और फिर आया शिवरात्रि का पर्व। गाँव में शिव जी के जीवन पर आधारित एक नाटक खेला जाने वाला था। किन्तु ऐन मौके पर —
गदाई, हमारे नाटक का नायक बीमार पड़ गया है!
सब चाहते हैं कि तुम उसकी जगह ले लो। कर सकोगे?
मैं... मैं... अच्छा! मैं कर लूँगा।

और इसलिए–
...तुम्हारे शरीर पर भभूत चिह्न ...
...यह रहा तुम्हारी जटाओं में चंद्रमा...
...और तुम सज गये !

जब गदाई मंच पर पहुँचा तो दर्शक दंग रह गये।
वाह! यह गदाई है या स्वयं भगवान शिव हमारे बीच पधारे हैं?
इसकी आँखों से लग रहा है जैसे गहरे चिन्तन में लीन है!

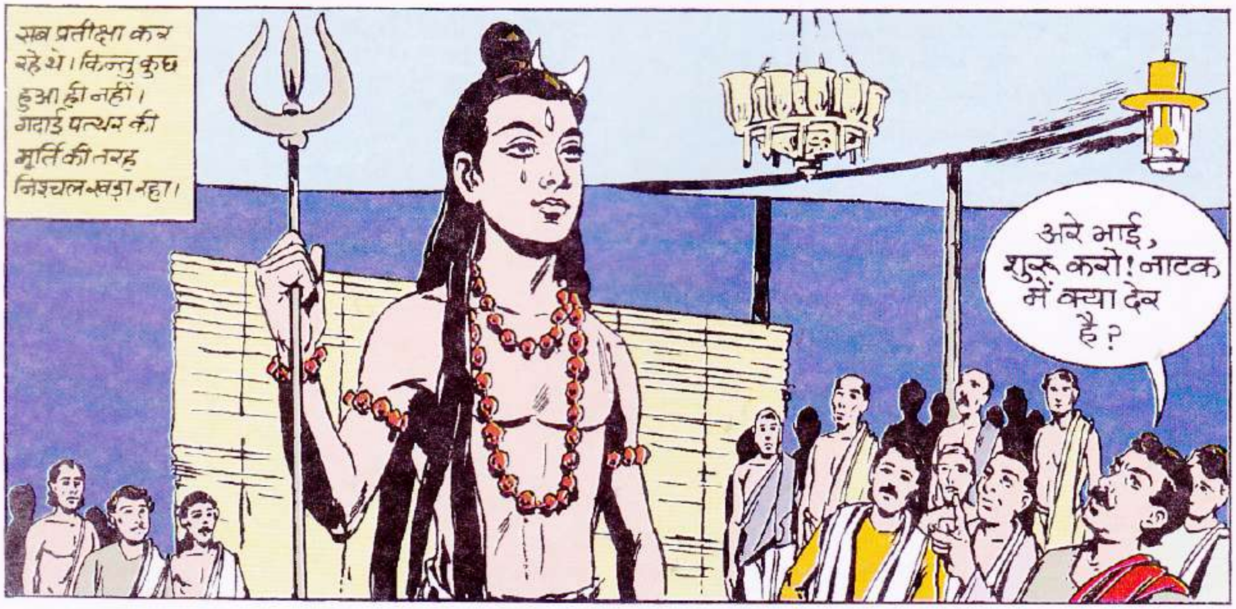
सब प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु कुछ हुआ ही नहीं। गदाई पत्थर की मूर्ति की तरह निश्चल खड़ा रहा।
अरे भाई, शुरू करो! नाटक में क्या देर है?

नाटक का निर्देशक और अन्य अभिनेता मंच पर दौड़ पड़े।
अरे! यह तो बेहोश हो गया! गदाई, गदाई ... सुनो तो सही!
गदाई, जागो भी!
उसे उठा कर घर ले जाया गया।
तुमने उसके चेहरे पर वह अलौकिक मुस्कान देखी थी?
हाँ। जरूर वह समाधि में लीन हो गया होगा।
गदाई नाटकों में भाग लेता रहा और इससे उसके भाई रामकुमार को फिक्र होने लगी।
गदाई अब सत्रह बरस का हो गया है। मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगा। अपनी कलकत्ते की शाला में भरती कर दूँगा।
और बाद में _
गदाई, मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे साथ कलकत्ता चलो।
अच्छा, दादा, चलूँगा।
और इस तरह कामारपुकुर में गदाई के सुहावने बचपन के दिन पूरे हुए।

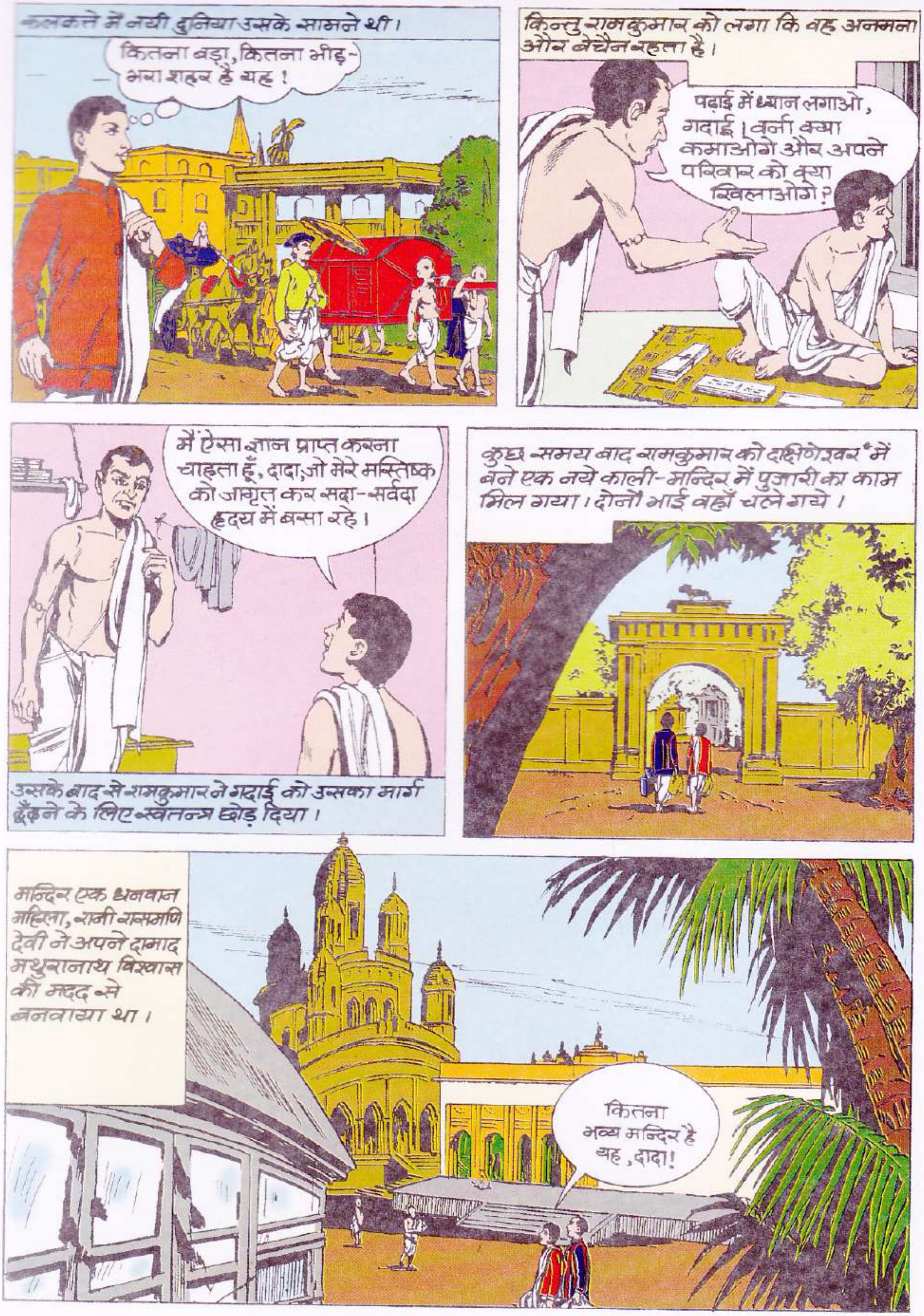
कलकत्ते में नयी दुनिया उसके सामने थी।
कितना बड़ा, कितना भीड़-भरा शहर है यह!
किन्तु रामकुमार को लगा कि वह अनमना और बेचैन रहता है।
पढ़ाई में ध्यान लगाओ, गदाई। वर्ना क्या कमाओगे और अपने परिवार को क्या खिलाओगे?
मैं ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ, दादा, जो मेरे मस्तिष्क को जागृत कर सदा-सर्वदा हृदय में बसा रहे।
उसके बाद से रामकुमार ने गदाई को उसका मार्ग ढूँढ़ने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया।
कुछ समय बाद रामकुमार को दक्षिणेश्वर* में बने एक नये काली-मन्दिर में पुजारी का काम मिल गया। दोनों भाई वहाँ चले गये।
मन्दिर एक धनवान महिला, रानी रासमणि देवी ने अपने दामाद मथुरानाथ विश्वास की मदद से बनवाया था।
कितना भव्य मन्दिर है यह, दादा!

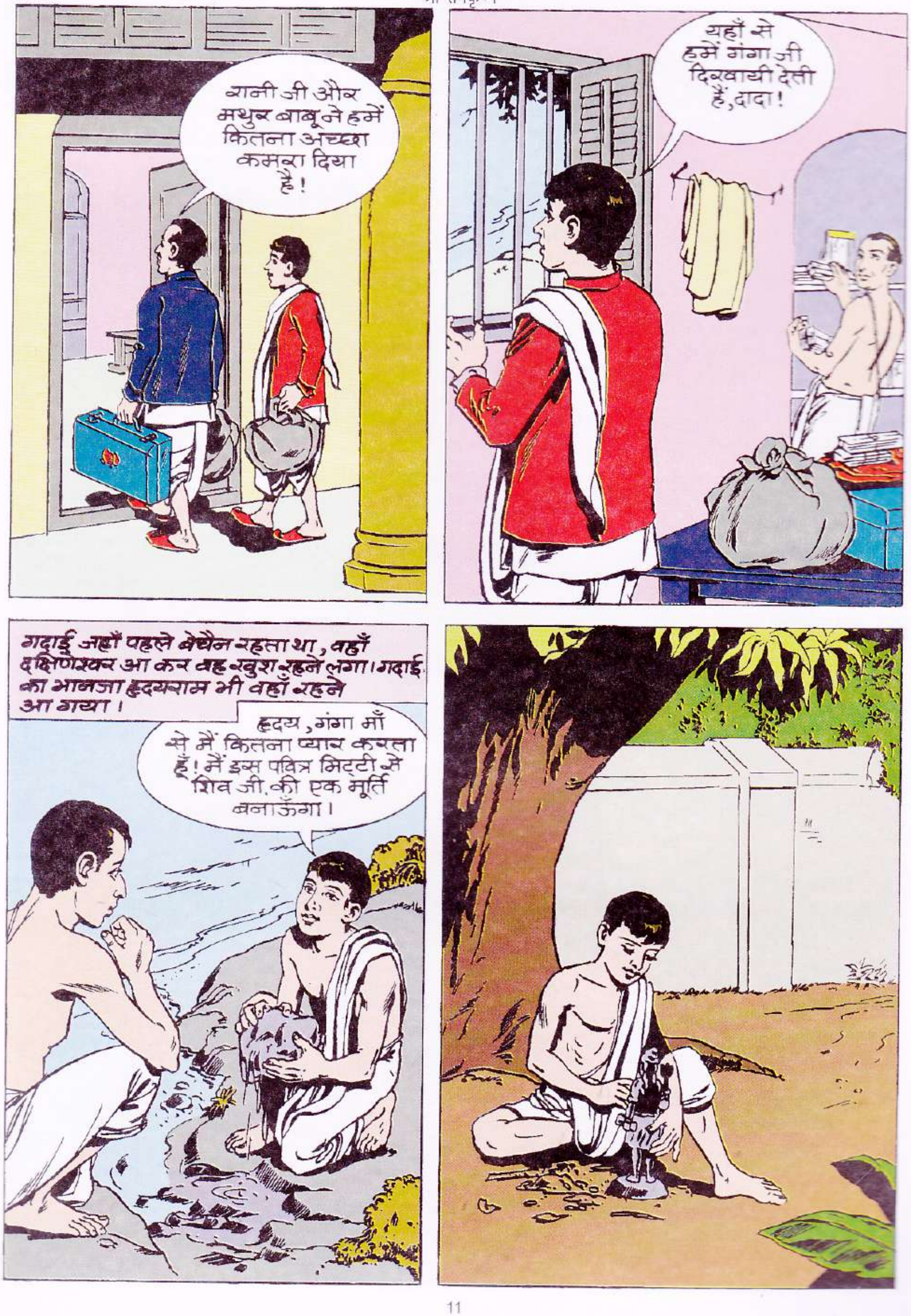
रानी जी और मथुर बाबू ने हमें कितना अच्छा कमरा दिया है!
यहाँ से हमें गंगा जी दिखायी देती हैं, दादा!
गदाई जहाँ पहले बेचैन रहता था, वहाँ दक्षिणेश्वर आ कर वह खुश रहने लगा। गदाई का भानजा हृदयराम भी वहाँ रहने आ गया।
हृदय, गंगा माँ से मैं कितना प्यार करता हूँ! मैं इस पवित्र मिट्टी से शिव जी की एक मूर्ति बनाऊँगा।

तभी मथुर बाबू उधर से निकले।
अरे, गदाई! कितनी सुन्दर प्रतिमा है! तुम्हें कहाँ से मिली?
यह मैंने खुद बनायी है, मथुर बाबू।
मथुर बाबू वह मूर्ति रानी रासमणि के पास ले गये।
कितनी सुन्दर व कलापूर्ण है! गदाई की आत्मा में जैसे प्रभु का वास है।
यह लड़का सबसे भिन्न, सबसे विलक्षण है। मन करता है वह सदा हमारे पास ही रहे।
इसलिए मथुर बाबू रामकुमार के पास जा पहुँचे।
बाबू, मैं चाहता हूँ कि गदाई यहाँ का पुजारी बने।
मथुर बाबू, मेरा भाई विचित्र है। मुझे नहीं लगता कि वह कभी भी किसी काम में स्थायी रूप से टिक सकेगा।
गदाई को रामकुमार से मथुर बाबू की उसमें दिलचस्पी होने की बात पता चल गयी। किन्तु जब मथुर बाबू ने उससे मिलना चाहा—
गदाई! गदाई, ठहरो तो सही! मैं तुमसे पूछना... अरे, चला गया!

हृदय को भी गदाई के व्यवहार से आश्चर्य हुआ।
तुम मथुर बाबू से मिलने से क्यों कतराते हो? क्या तुम पुजारी नहीं बनना चाहते? यों तो हमेशा ईश्वर के ध्यान में डूबे रहते हो!
हृदय, यदि मैंने यह काम मंजूर किया तो देवी के आभूषणों की देखभाल भी मुझ पर आयेगी। और मैं वह जिम्मेदारी लेना नहीं चाहता।
लेकिन हाँ, यदि तुम आभूषणों की हिफाजत का भार ले लो तो मैं यह काम कर लूँगा।
हृदय मान गया। और गदाई रामकुमार के साथ काली मन्दिर में सहायक पुजारी बन गया। उसने श्रद्धा और भक्ति से देवी की सेवा आरंभ कर दी।
रामकृष्ण, मेरी इच्छा पूरी हुई! अब तुम दक्षिणेश्वर के हो गये।
इस समय तक गदाई को रामकृष्ण के नाम से पुकारा जाने लगा। शायद यह नाम उसे मथुर बाबू ने दिया था।

एक दिन रानी जी और मथुरबाबू रामकृष्ण के पास एक समस्या ले कर आये ।
बाबा, कृष्ण* की मूर्ति का एक पैर संयोगवश टूट गया है। मैं तो मूर्ति से अलग होना नहीं चाहती किन्तु पंडितों का कहना है कि मूर्ति गंगा में विसर्जित कर देनी चाहिए।
अब हम करें क्या, बाबा?
रामकृष्ण पल भर को मौन रहे। फिर —
यदि रानी जी के एक दामाद का पैर टूट जाये, तो क्या वे उन्हें फेंक देंगी?
मूर्ति की मरम्मत करवा कर उसे सदा की भाँति पूजिए।
रामकृष्ण ने स्वयं मूर्ति का टूटा पैर जोड़ दिया। और उनका किया काम इतना बारीक था कि पैनी नजर वालों को भी फर्क पता नहीं लग सकता था!

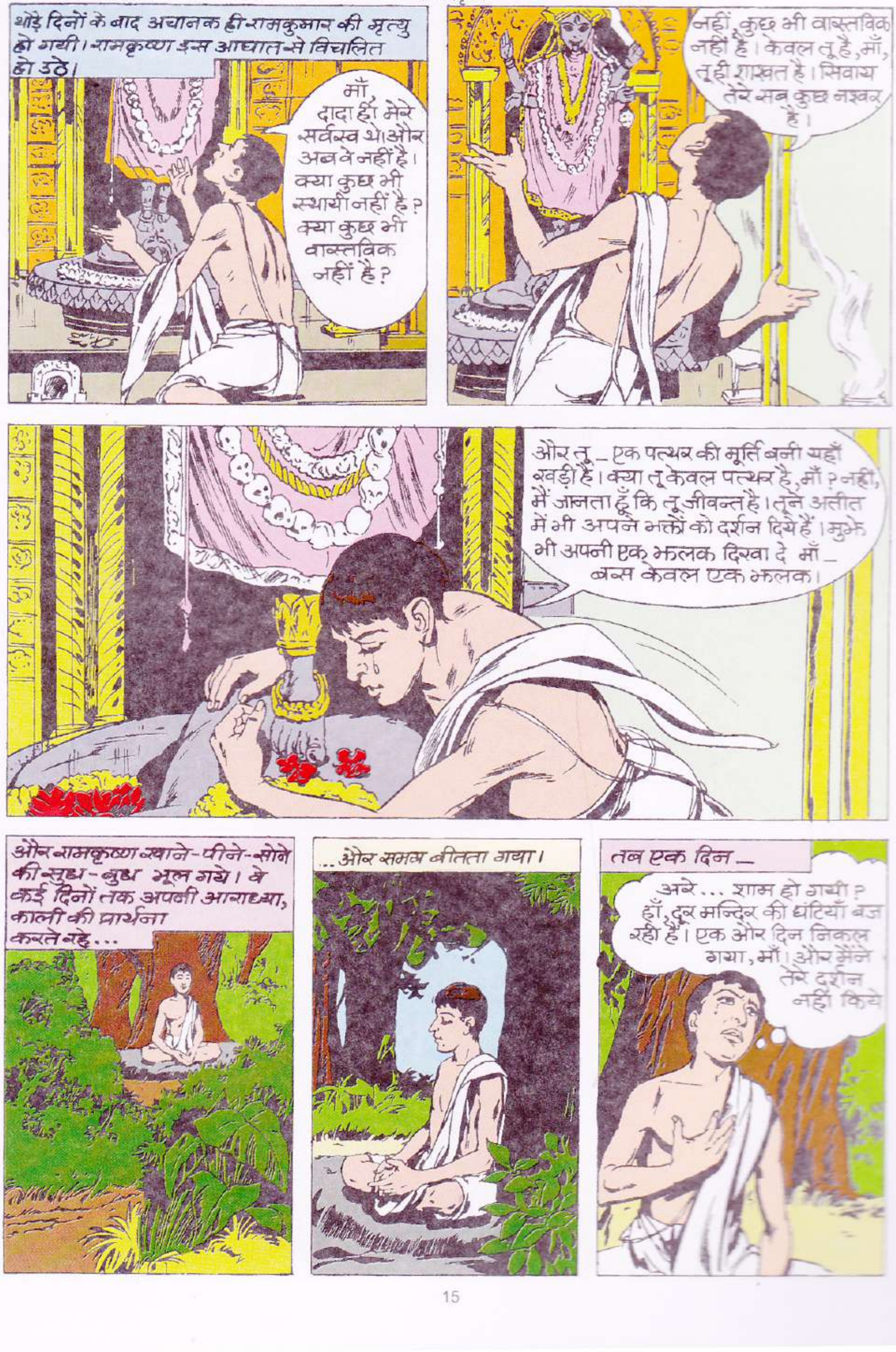
थोड़े दिनों के बाद अचानक ही रामकुमार की मृत्यु हो गयी। रामकृष्ण इस आघात से विचलित हो उठे।
माँ, दादा ही मेरे सर्वस्व थे। और अब वे नहीं हैं। क्या कुछ भी स्थायी नहीं है? क्या कुछ भी वास्तविक नहीं है?
नहीं, कुछ भी वास्तविक नहीं है। केवल तू है, माँ, तू ही शाश्वत है। सिवाय तेरे सब कुछ नश्वर है।
और तू – एक पत्थर की मूर्ति बनी यहाँ खड़ी है। क्या तू केवल पत्थर है, माँ? नहीं, मैं जानता हूँ कि तू जीवन्त है। तूने अतीत में भी अपने भक्तों को दर्शन दिये हैं। मुझे भी अपनी एक झलक दिखा दे माँ – बस केवल एक झलक।
और रामकृष्ण खाने-पीने-सोने की सुध-बुध भूल गये। वे कई दिनों तक अपनी आराध्या, काली की प्रार्थना करते रहे...
...और समय बीतता गया।
तब एक दिन –
अरे... शाम हो गयी? हाँ, दूर मन्दिर की घंटियाँ बज रही हैं। एक और दिन निकल गया, माँ। और मैंने तेरे दर्शन नहीं किये

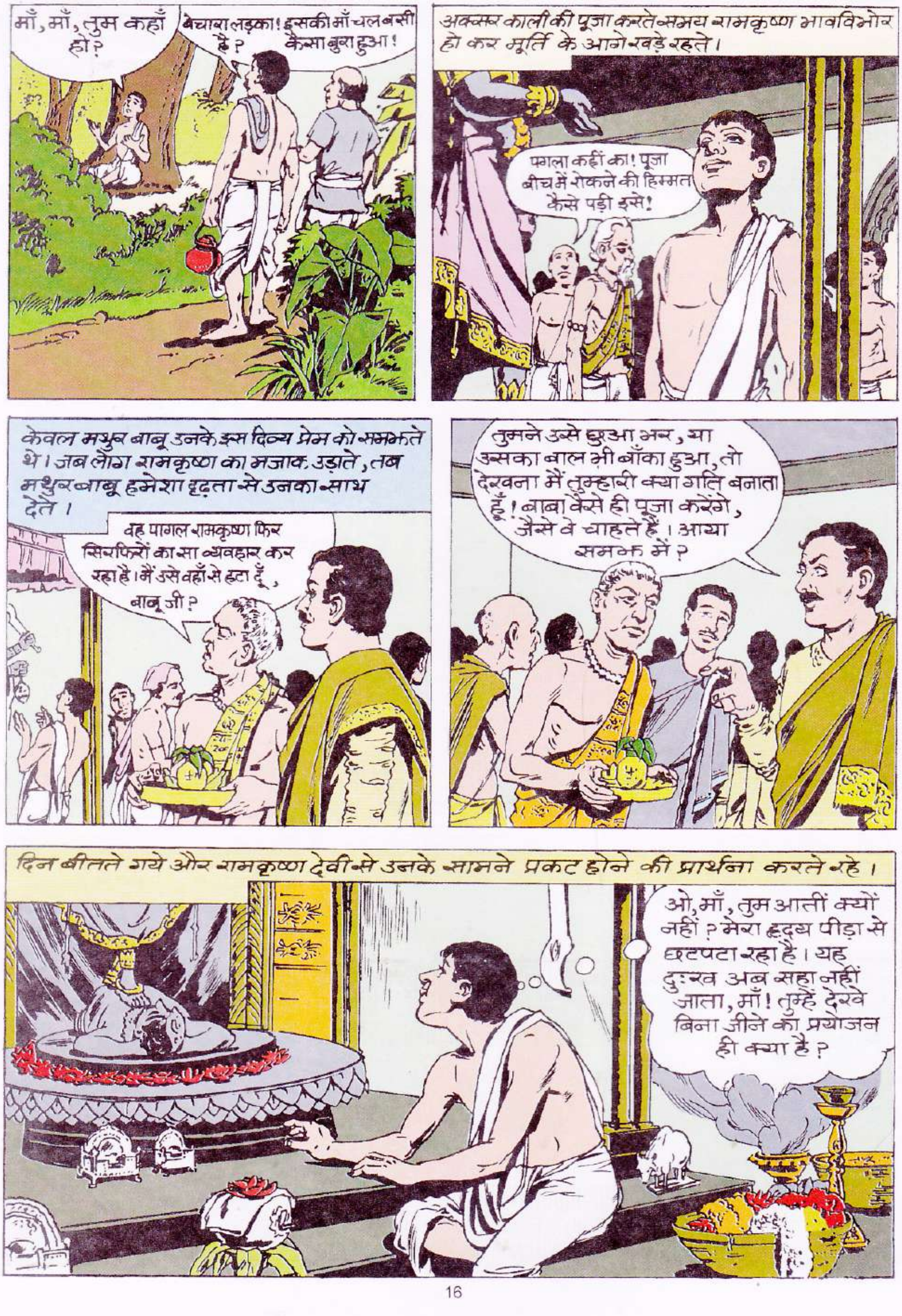
माँ, माँ, तुम कहाँ हो?
बेचारा लड़का! इसकी माँ चल बसी है? कैसा बुरा हुआ!
अक्सर काली की पूजा करते समय रामकृष्ण भावविभोर हो कर मूर्ति के आगे खड़े रहते।
पगला कहीं का! पूजा बीच में रोकने की हिम्मत कैसे पड़ी इसे!
केवल मथुर बाबू उनके इस दिव्य प्रेम को समझते थे। जब लोग रामकृष्ण का मजाक उड़ाते, तब मथुर बाबू हमेशा दृढ़ता से उनका साथ देते।
वह पागल रामकृष्ण फिर सिरफिरों का सा व्यवहार कर रहा है। मैं उसे वहाँ से हटा दूँ, बाबू जी?
तुमने उसे छुआ भर, या उसका बाल भी बाँका हुआ, तो देखना मैं तुम्हारी क्या गति बनाता हूँ! बाबा वैसे ही पूजा करेंगे, जैसे वे चाहते हैं। आया समझ में?
दिन बीतते गये और रामकृष्ण देवी से उनके सामने प्रकट होने की प्रार्थना करते रहे।
ओ, माँ, तुम आतीं क्यों नहीं? मेरा हृदय पीड़ा से छटपटा रहा है। यह दुःख अब सहा नहीं जाता, माँ! तुम्हें देखे बिना जीने का प्रयोजन ही क्या है?

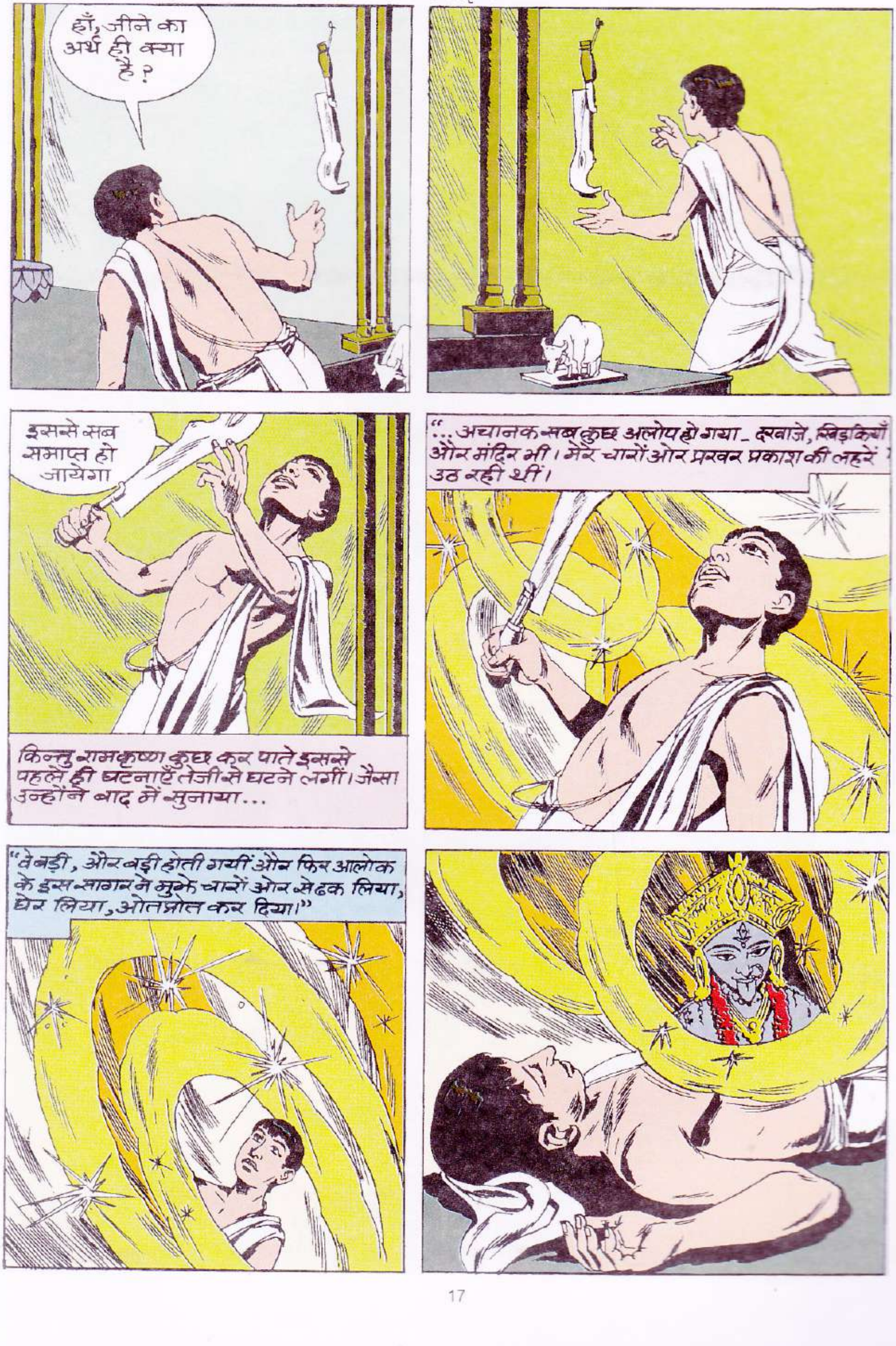
हाँ, जीने का अर्थ ही क्या है ?
इससे सब समाप्त हो जायेगा
किन्तु रामकृष्ण कुछ कर पाते इससे पहले ही घटनाएँ तेजी से घटने लगीं। जैसा उन्होंने बाद में सुनाया...
"...अचानक सब कुछ अलोप हो गया _ दरवाज़े, खिड़कियाँ और मंदिर भी। मेरे चारों ओर प्रखर प्रकाश की लहरें उठ रही थीं।
"वे बड़ी, और बड़ी होती गयीं और फिर आलोक के इस सागर ने मुझे चारों ओर से ढक लिया, घेर लिया, ओतप्रोत कर दिया।"

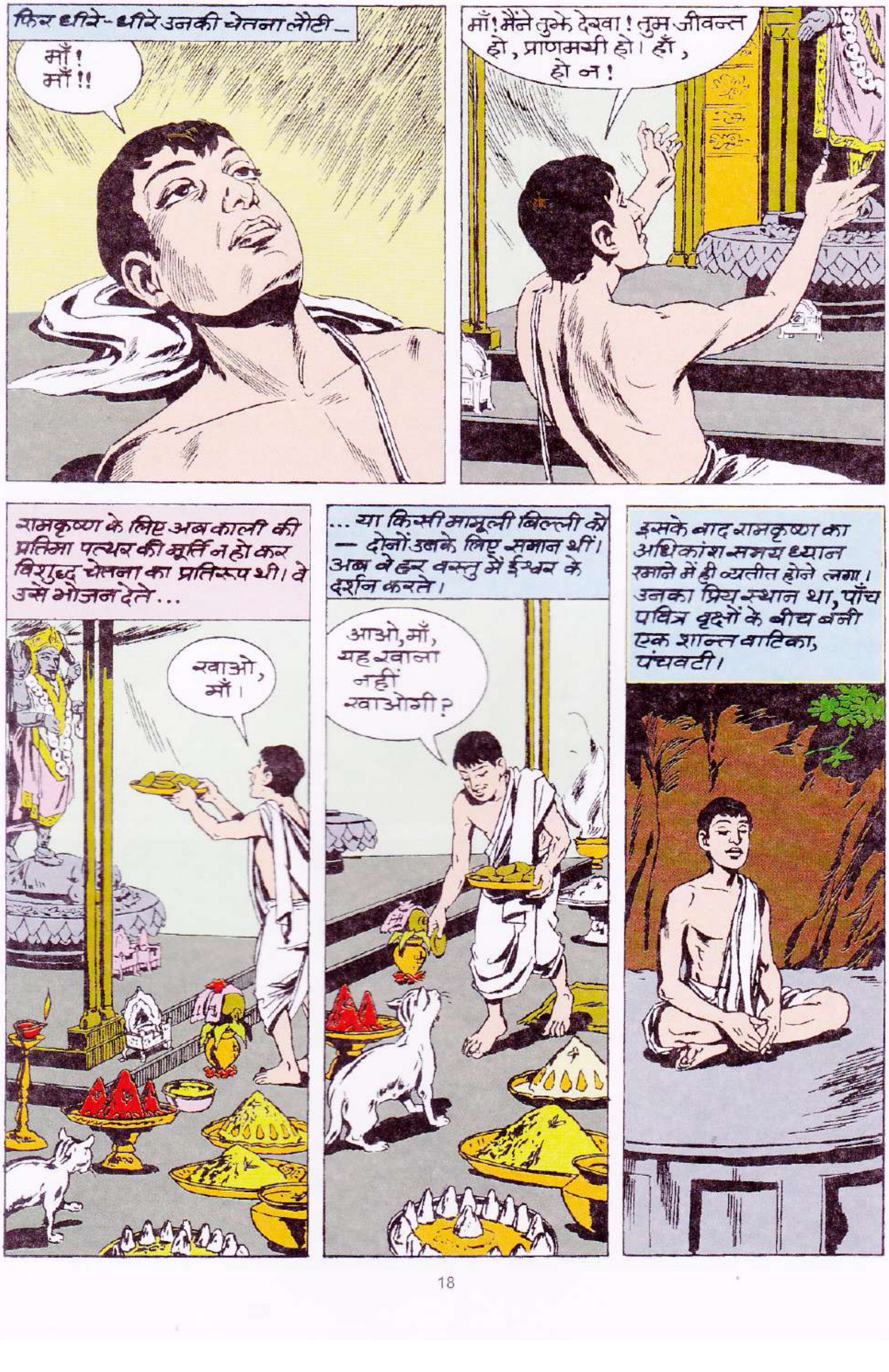
फिर धीरे-धीरे उनकी चेतना लौटी –
माँ! माँ!!
माँ! मैंने तुम्हें देखा! तुम जीवन्त हो, प्राणमयी हो। हाँ, हो न!
रामकृष्ण के लिए अब काली की प्रतिमा पत्थर की मूर्ति न हो कर विशुद्ध चेतना का प्रतिरूप थी। वे उसे भोजन देते...
खाओ, माँ।
... या किसी मामूली बिल्ली को — दोनों उनके लिए समान थीं। अब वे हर वस्तु में ईश्वर के दर्शन करते।
आओ, माँ, यह खाना नहीं खाओगी?
इसके बाद रामकृष्ण का अधिकांश समय ध्यान रमाने में ही व्यतीत होने लगा। उनका प्रिय स्थान था, पाँच पवित्र वृक्षों के बीच बनी एक शान्त वाटिका, पंचवटी।

उधर कामारपुकुर में रामकृष्ण की माँ के पास विचित्र अफवाहें पहुँचीं।
रामेश्वर ... बेटा, आज मैंने ... सुना कि अपना गदाई पागल हो रहा है। मैं ..., मैं ...
रो नहीं, माँ। मैं उसे यहाँ आने के लिए चिट्ठी लिखूँगा। वह जल्दी ही अच्छा हो जायेगा।

तुम्हें हुआ क्या है, गदाई? अब समझी! मैं तुम्हारा ब्याह कर दूँगी। फिर तू कभी बीमार नहीं पड़ेगा।

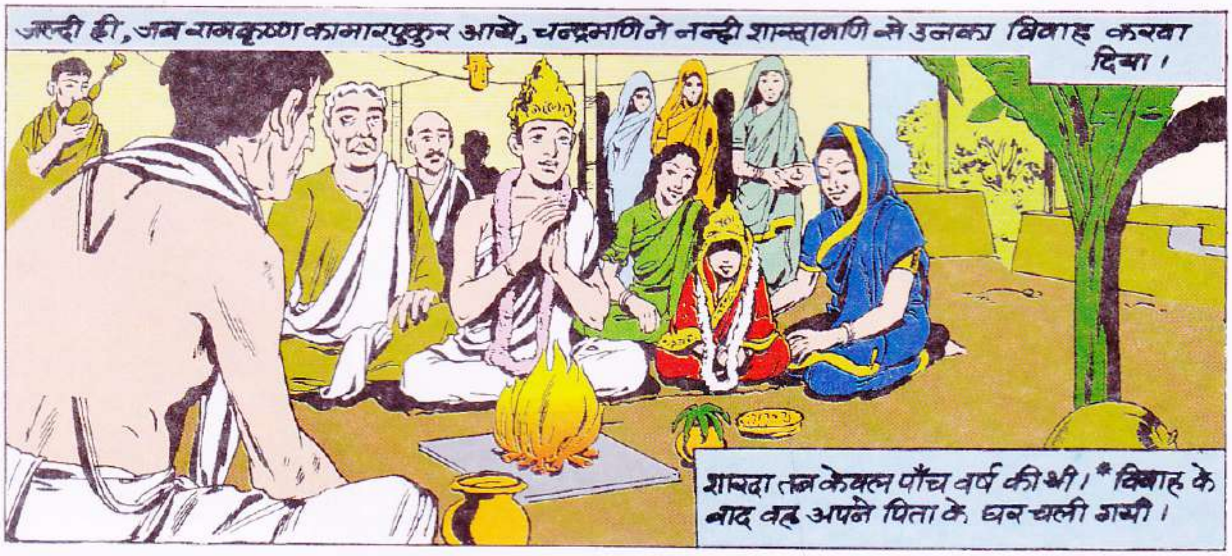
जल्दी ही, जब रामकृष्ण कामारपुकुर आये, चन्द्रमणि ने नन्ही शारदामणि से उनका विवाह करवा दिया।
शारदा तब केवल पाँच वर्ष की थी।* विवाह के बाद वह अपने पिता के घर चली गयी।

डेढ़ वर्ष बाद रामकृष्ण उसे थोड़े दिनों के लिए कामारपुकुर लाये। वे उसका बड़ा खयाल रखते। स्वयं अपने हाथों से उसे खाना खिलाते, उसका लाड़ - दुलार करते।

फिर शारदा अपने पिता के घर चली गयी और रामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौट आये।

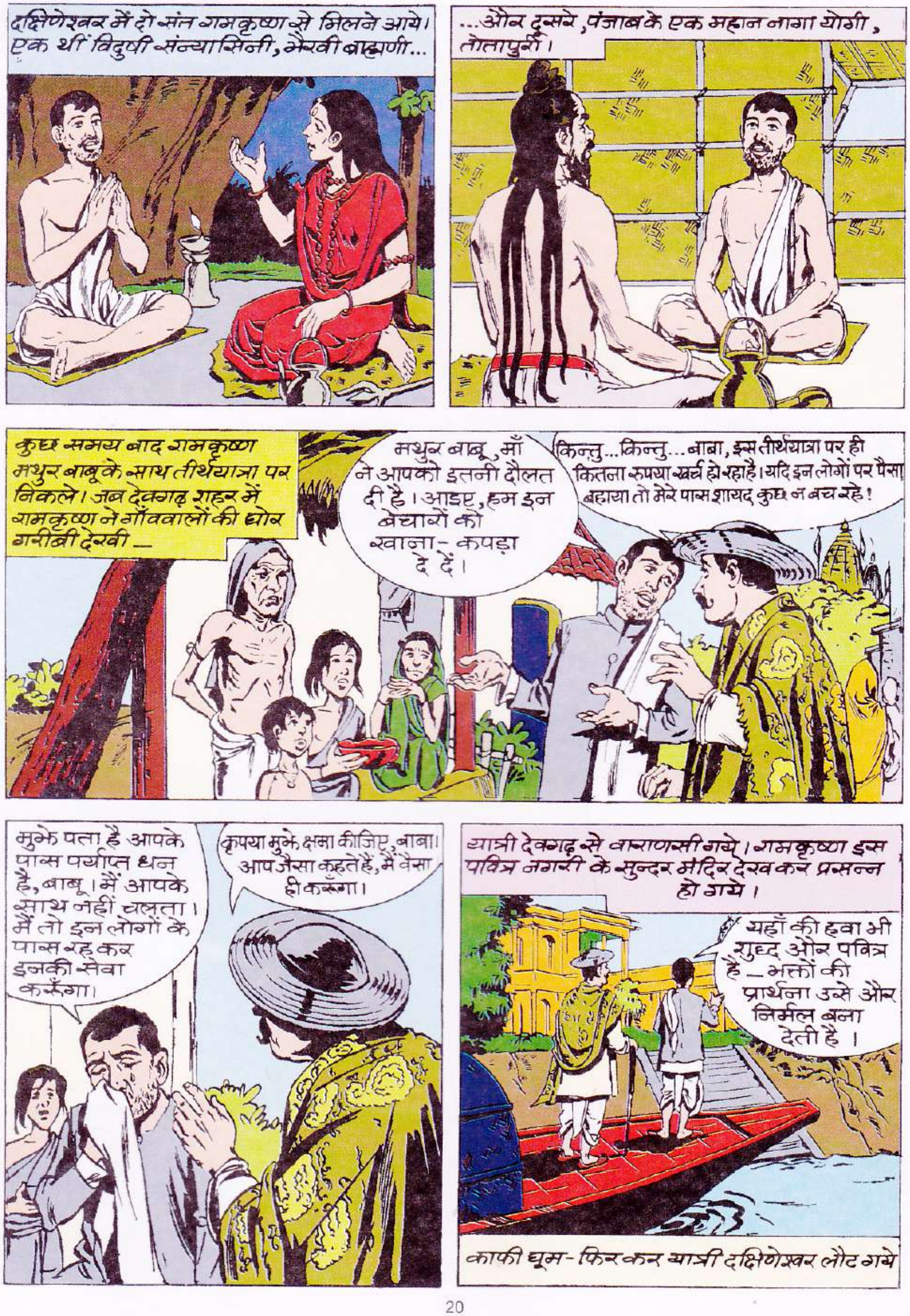
दक्षिणेश्वर में दो संत रामकृष्ण से मिलने आये। एक थीं विदुषी संन्यासिनी, भैरवी ब्राह्मणी...
...और दूसरे, पंजाब के एक महान नागा योगी, तोतापुरी।
कुछ समय बाद रामकृष्ण मथुर बाबू के साथ तीर्थयात्रा पर निकले। जब देवगढ़ शहर में रामकृष्ण ने गाँववालों की घोर गरीबी देखी –
मथुर बाबू, माँ ने आपको इतनी दौलत दी है। आइए, हम इन बेचारों को खाना-कपड़ा दे दें।
किन्तु...किन्तु...बाबा, इस तीर्थयात्रा पर ही कितना रुपया खर्च हो रहा है। यदि इन लोगों पर पैसा बहाया तो मेरे पास शायद कुछ न बच रहे!
मुझे पता है आपके पास पर्याप्त धन है, बाबू। मैं आपके साथ नहीं चलता। मैं तो इन लोगों के पास रह कर इनकी सेवा करूँगा।
कृपया मुझे क्षमा कीजिए, बाबा। आप जैसा कहते हैं, मैं वैसा ही करूँगा।
यात्री देवगढ़ से वाराणसी गये। रामकृष्ण इस पवित्र नगरी के सुन्दर मंदिर देख कर प्रसन्न हो गये।
यहाँ की हवा भी शुद्ध और पवित्र है – भक्तों की प्रार्थना उसे और निर्मल बना देती है।
काफी घूम-फिर कर यात्री दक्षिणेश्वर लौट गये

इस बीच नन्ही शारदामणि बड़ी हो रही थी। जब वह सत्रह वर्ष की हुई, उसने श्री रामकृष्ण के बारे में उड़ती अफवाहें सुनीं।
सब कहते हैं कि मेरे पति पागल हैं। किन्तु मैं जानती हूँ कि यदि वे पागल हैं तो केवल प्रभु के लिए।
एक दिन अचानक उसने दक्षिणेश्वर जाने का फैसला किया।
शारदा – तुम! तुमसे फिर मिल कर बहुत खुशी हुई!
मैं आपके चरणों में रह कर आपकी सेवा करने आयी हूँ, स्वामी।
मैं आपकी कौन हूँ?
मेरी वही माँ जो मंदिर में है, वही माँ जिसने मुझे जन्म दिया – हाँ, वही माँ इस समय मेरे पैर दबा रही है। मैं तुम्हें देवी माँ का ही एक स्वरूप मानता हूँ।
और एक दिन रामकृष्ण ने शारदा को देवी के आसन पर बैठा कर उसकी पूजा की।

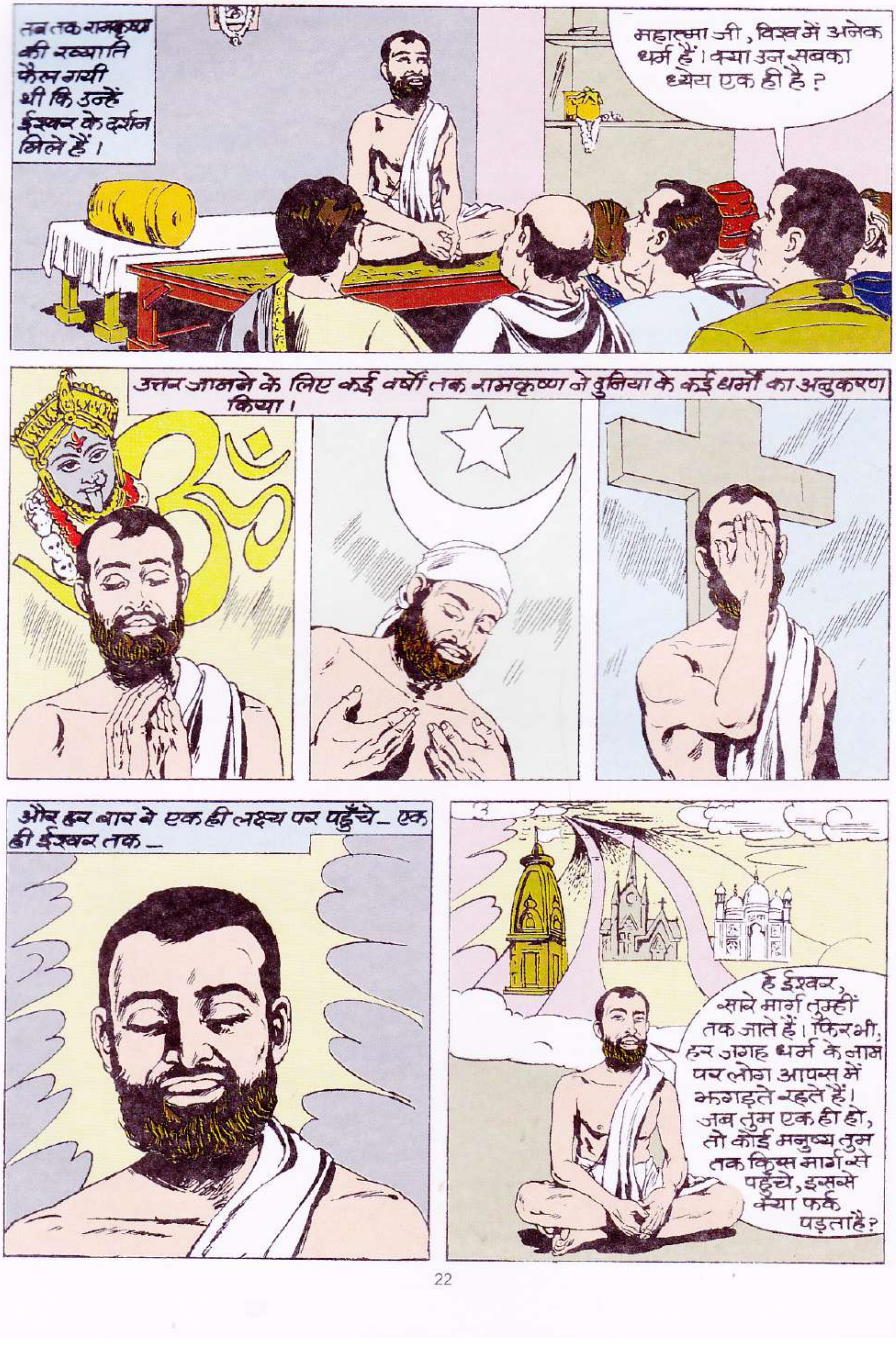
तब तक रामकृष्ण की ख्याति फैल गयी थी कि उन्हें ईश्वर के दर्शन मिले हैं।
महात्मा जी, विश्व में अनेक धर्म हैं। क्या उन सबका ध्येय एक ही है?
उत्तर जानने के लिए कई वर्षों तक रामकृष्ण ने दुनिया के कई धर्मों का अनुकरण किया।
और हर बार वे एक ही लक्ष्य पर पहुँचे _ एक ही ईश्वर तक _
हे ईश्वर, सारे मार्ग तुम्हीं तक जाते हैं। फिर भी, हर जगह धर्म के नाम पर लोग आपस में झगड़ते रहते हैं। जब तुम एक ही हो, तो कोई मनुष्य तुम तक किस मार्ग से पहुँचे, इससे क्या फर्क पड़ता है?

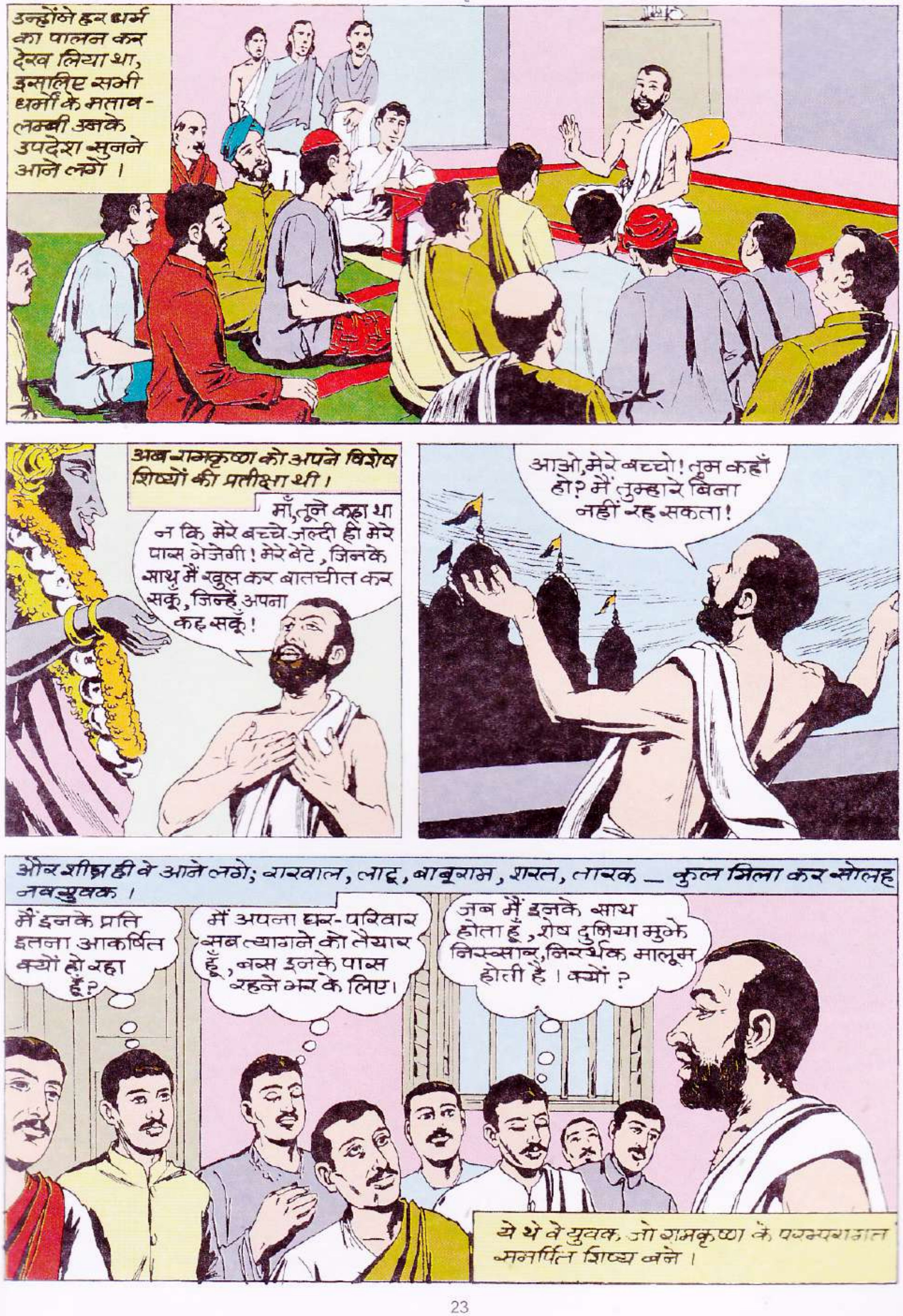
उन्होंने हर धर्म का पालन कर देख लिया था, इसलिए सभी धर्मों के मताव-लम्बी उनके उपदेश सुनने आने लगे ।
अब रामकृष्ण को अपने विशेष शिष्यों की प्रतीक्षा थी।
माँ, तूने कहा था न कि मेरे बच्चे जल्दी ही मेरे पास भेजेगी! मेरे बेटे, जिनके साथ मैं खुल कर बातचीत कर सकूं, जिन्हें अपना कह सकूं!
आओ, मेरे बच्चो! तुम कहाँ हो? मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता!
और शीघ्र ही वे आने लगे; राखाल, लाटू, बाबूराम, शरत, तारक — कुल मिला कर सोलह नवयुवक ।
मैं इनके प्रति इतना आकर्षित क्यों हो रहा हूँ?
मैं अपना घर-परिवार सब त्यागने को तैयार हूँ, बस इनके पास रहने भर के लिए।
जब मैं इनके साथ होता हूँ, शेष दुनिया मुझे निस्सार, निरर्थक मालूम होती है। क्यों?
ये थे वे युवक, जो रामकृष्ण के परम्परागत समर्पित शिष्य बने ।

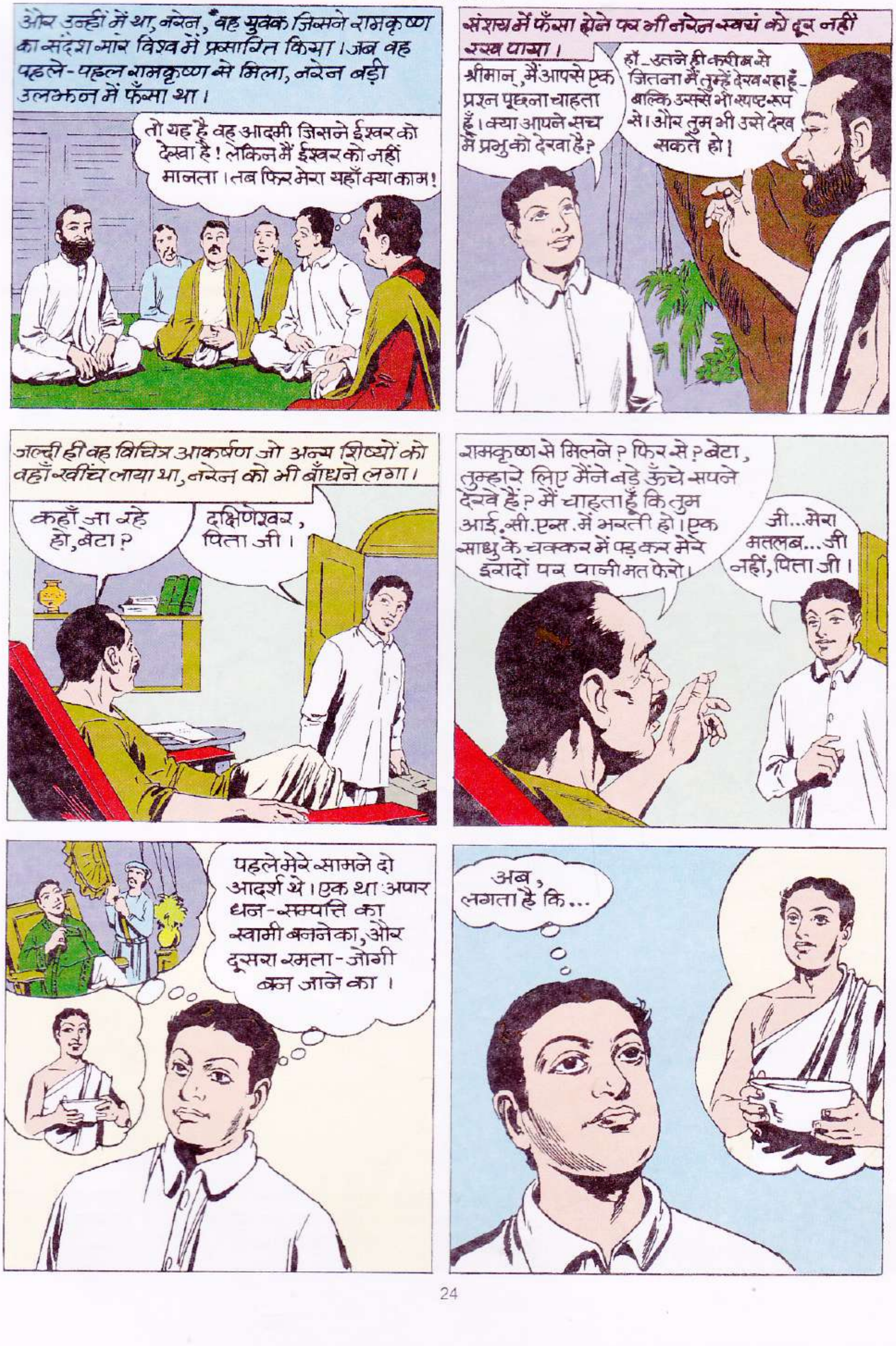
और उन्हीं में था, नरेन, *वह युवक जिसने रामकृष्ण का संदेश सारे विश्व में प्रसारित किया। जब वह पहले-पहल रामकृष्ण से मिला, नरेन बड़ी उलझन में फँसा था।
तो यह है वह आदमी जिसने ईश्वर को देखा है! लेकिन मैं ईश्वर को नहीं मानता। तब फिर मेरा यहाँ क्या काम!
संशय में फँसा होने पर भी नरेन स्वयं को दूर नहीं रख पाया।
श्रीमान्, मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या आपने सच में प्रभु को देखा है?
हाँ – उतने ही करीब से जितना मैं तुम्हें देख रहा हूँ – बल्कि उससे भी स्पष्ट रूप से। और तुम भी उसे देख सकते हो।
जल्दी ही वह विचित्र आकर्षण जो अन्य शिष्यों को वहाँ खींच लाया था, नरेन को भी बाँधने लगा।
कहाँ जा रहे हो, बेटा?
दक्षिणेश्वर, पिता जी।
रामकृष्ण से मिलने? फिर से? बेटा, तुम्हारे लिए मैंने बड़े ऊँचे सपने देखे हैं? मैं चाहता हूँ कि तुम आई.सी.एस. में भरती हो। एक साधु के चक्कर में पड़ कर मेरे इरादों पर पानी मत फेरो।
जी...मेरा मतलब...जी नहीं, पिता जी।
पहले मेरे सामने दो आदर्श थे। एक था अपार धन-सम्पत्ति का स्वामी बनने का, और दूसरा रमता-जोगी बन जाने का।
अब, लगता है कि...

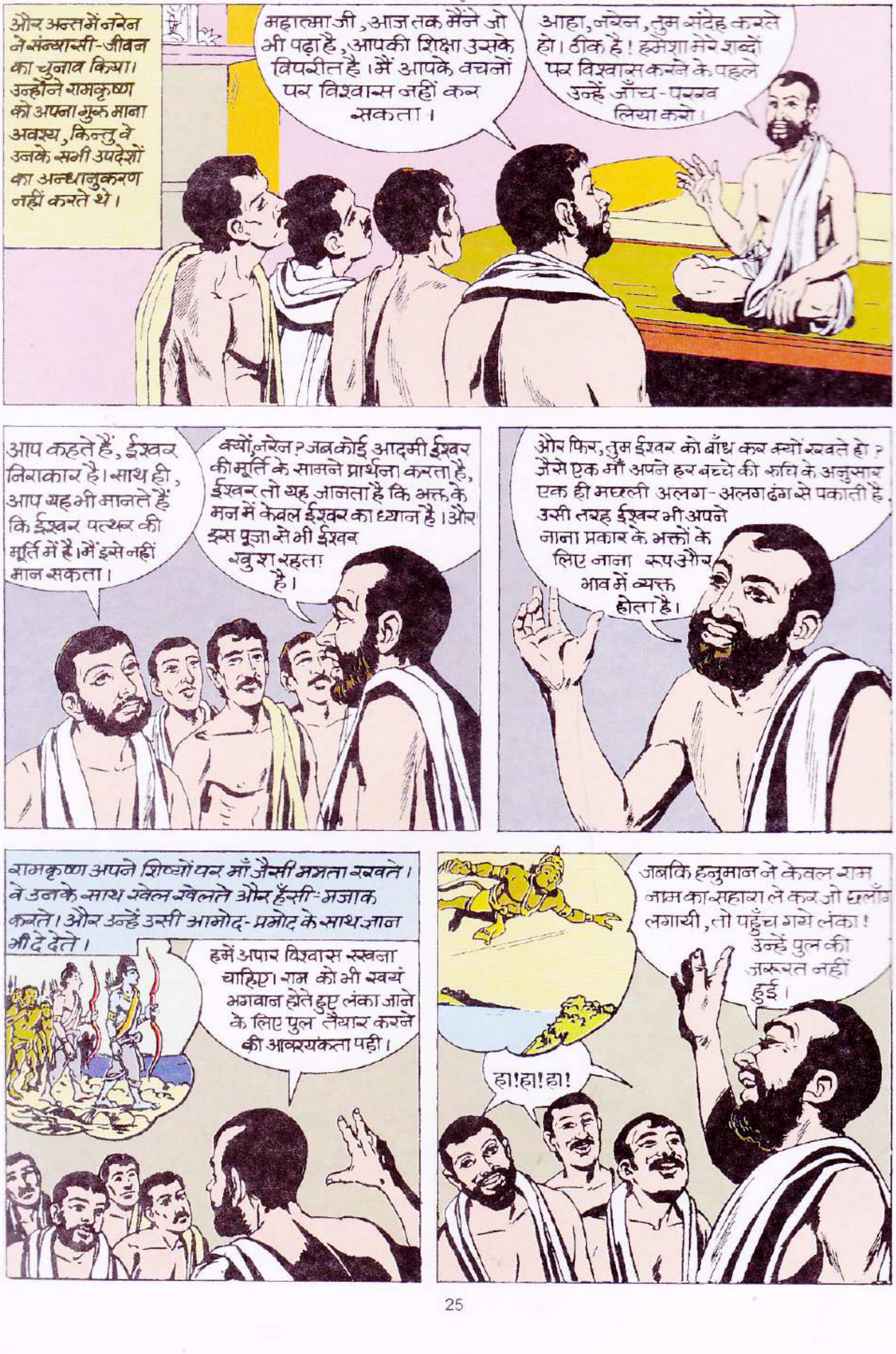
और अन्त में नरेन ने संन्यासी-जीवन का चुनाव किया। उन्होंने रामकृष्ण को अपना गुरू माना अवश्य, किन्तु वे उनके सभी उपदेशों का अन्धानुकरण नहीं करते थे।
महात्मा जी, आज तक मैंने जो भी पढ़ा है, आपकी शिक्षा उसके विपरीत है। मैं आपके वचनों पर विश्वास नहीं कर सकता।
आहा, नरेन, तुम संदेह करते हो। ठीक है! हमेशा मेरे शब्दों पर विश्वास करने के पहले उन्हें जाँच-परख लिया करो।
आप कहते हैं, ईश्वर निराकार है। साथ ही, आप यह भी मानते हैं कि ईश्वर पत्थर की मूर्ति में है। मैं इसे नहीं मान सकता।
क्यों, नरेन? जब कोई आदमी ईश्वर की मूर्ति के सामने प्रार्थना करता है, ईश्वर तो यह जानता है कि भक्त के मन में केवल ईश्वर का ध्यान है। और इस पूजा से भी ईश्वर खुश रहता है।
और फिर, तुम ईश्वर को बाँध कर क्यों रखते हो? जैसे एक माँ अपने हर बच्चे की रुचि के अनुसार एक ही मछली अलग-अलग ढंग से पकाती है, उसी तरह ईश्वर भी अपने नाना प्रकार के भक्तों के लिए नाना रूप और भाव में व्यक्त होता है।
रामकृष्ण अपने शिष्यों पर माँ जैसी ममता रखते। वे उनके साथ खेल खेलते और हँसी-मजाक करते। और उन्हें उसी आमोद-प्रमोद के साथ ज्ञान भी दे देते।
हमें अपार विश्वास रखना चाहिए। राम को भी स्वयं भगवान होते हुए लंका जाने के लिए पुल तैयार करने की आवश्यकता पड़ी।
जबकि हनुमान ने केवल राम नाम का सहारा ले कर जो छलाँग लगायी, तो पहुँच गये लंका! उन्हें पुल की जरूरत नहीं हुई।
हा! हा! हा!

और शिष्य भी रामकृष्ण से वैसा ही स्नेह करते। एक बार निरंजन नामक उनका एक शिष्य नाव में गंगा पार कर रहा था।
तुमने दक्षिणेश्वर के रामकृष्ण को देखा है? एक और साधु जिसके पीछे आजकल लोग भाग रहे हैं।
सुना है पहलवान की तरह खुराक है उसकी। बस एक उसी बात की चिन्ता होगी उसे।
जरा सुनो...
...उनके बारे में ऐसा बोलने की हिम्मत कैसे पड़ी तुम्हें! मैं उनका शिष्य हूँ और उन्हें तुम सबसे अच्छी तरह जानता हूँ। वे सचमुच महान हैं! बड़े पहुँचे हुए महात्मा हैं!
एक शिष्य अपने गुरू के बारे में भला और क्या कहेगा?
तुम हो बेवकूफ जो उस पागल की बातें मानते हो!
अब उनके विरुद्ध एक शब्द भी कहा तो मैं नाव उलट दूँगा।
ऐ...! बैठो न! क्या कर रहे हो!
अरे भाई, मेरा यह मतलब नहीं था!
जब निरंजन ने रामकृष्ण को नाव में हुई घटना सुनायी—
तुम्हें इतना गुस्सा होने की क्या जरूरत थी? क्या किसी के कहने का मुझपर कोई असर हो सकता है? दूसरों की कही गयी बेकार बातों को ले कर तुम्हें विचलित नहीं होना चाहिए।

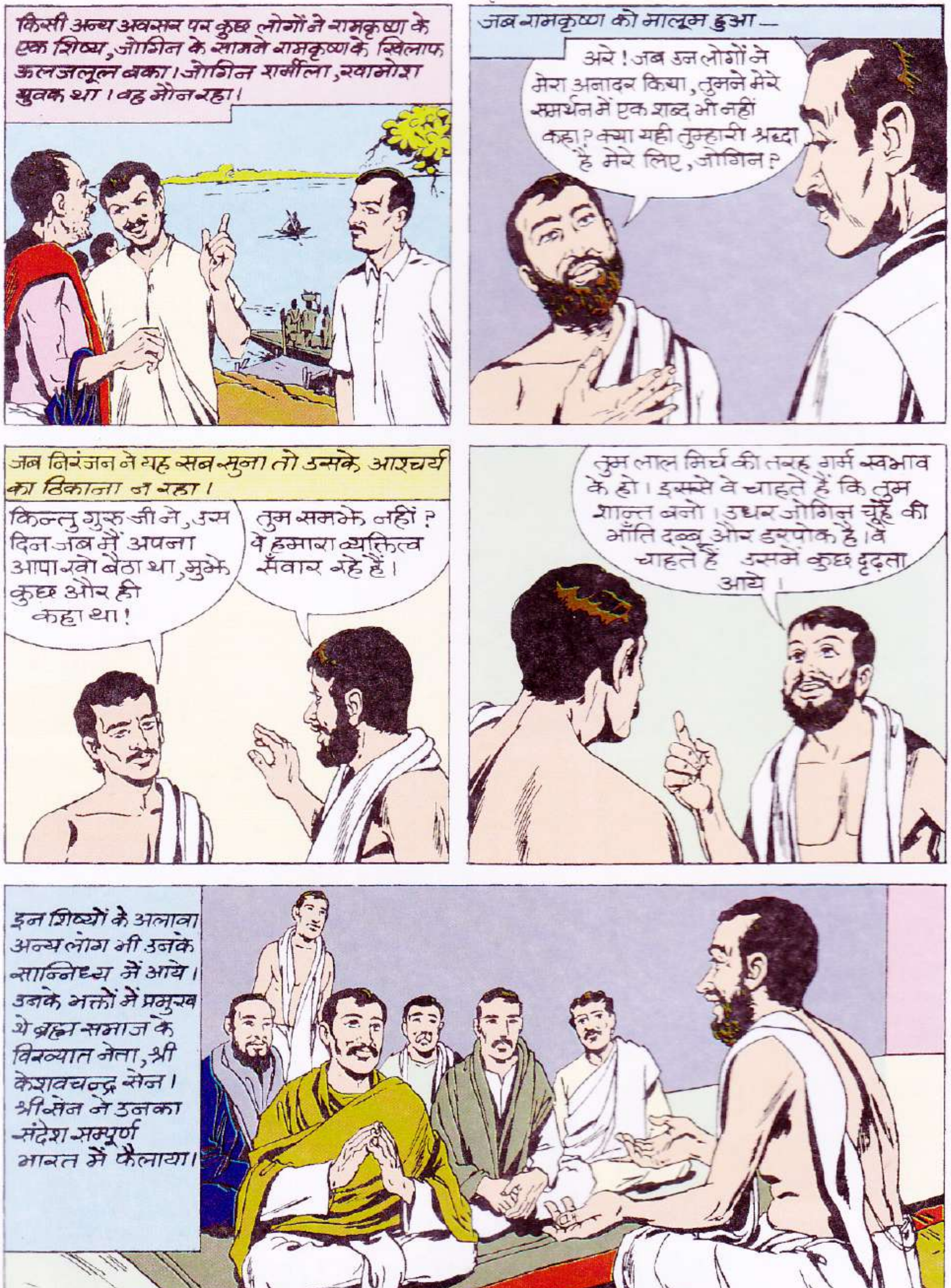
किसी अन्य अवसर पर कुछ लोगों ने रामकृष्ण के एक शिष्य, जोगिन के सामने रामकृष्ण के खिलाफ ऊलजलूल बका। जोगिन शर्मीला, खामोश युवक था। वह मौन रहा।
जब रामकृष्ण को मालूम हुआ —
अरे! जब उन लोगों ने मेरा अनादर किया, तुमने मेरे समर्थन में एक शब्द भी नहीं कहा? क्या यही तुम्हारी श्रद्धा है मेरे लिए, जोगिन?
जब निरंजन ने यह सब सुना तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।
किन्तु गुरु जी ने, उस दिन जब मैं अपना आपा खो बैठा था, मुझे कुछ और ही कहा था!
तुम समझे नहीं? वे हमारा व्यक्तित्व सँवार रहे हैं।
तुम लाल मिर्च की तरह गर्म स्वभाव के हो। इससे वे चाहते हैं कि तुम शान्त बनो। उधर जोगिन चूहे की भाँति दब्बू और डरपोक है। वे चाहते हैं उसमें कुछ दृढ़ता आये।
इन शिष्यों के अलावा अन्य लोग भी उनके सान्निध्य में आये। उनके भक्तों में प्रमुख थे ब्रह्म समाज के विख्यात नेता, श्री केशवचन्द्र सेन। श्री सेन ने उनका संदेश सम्पूर्ण भारत में फैलाया।

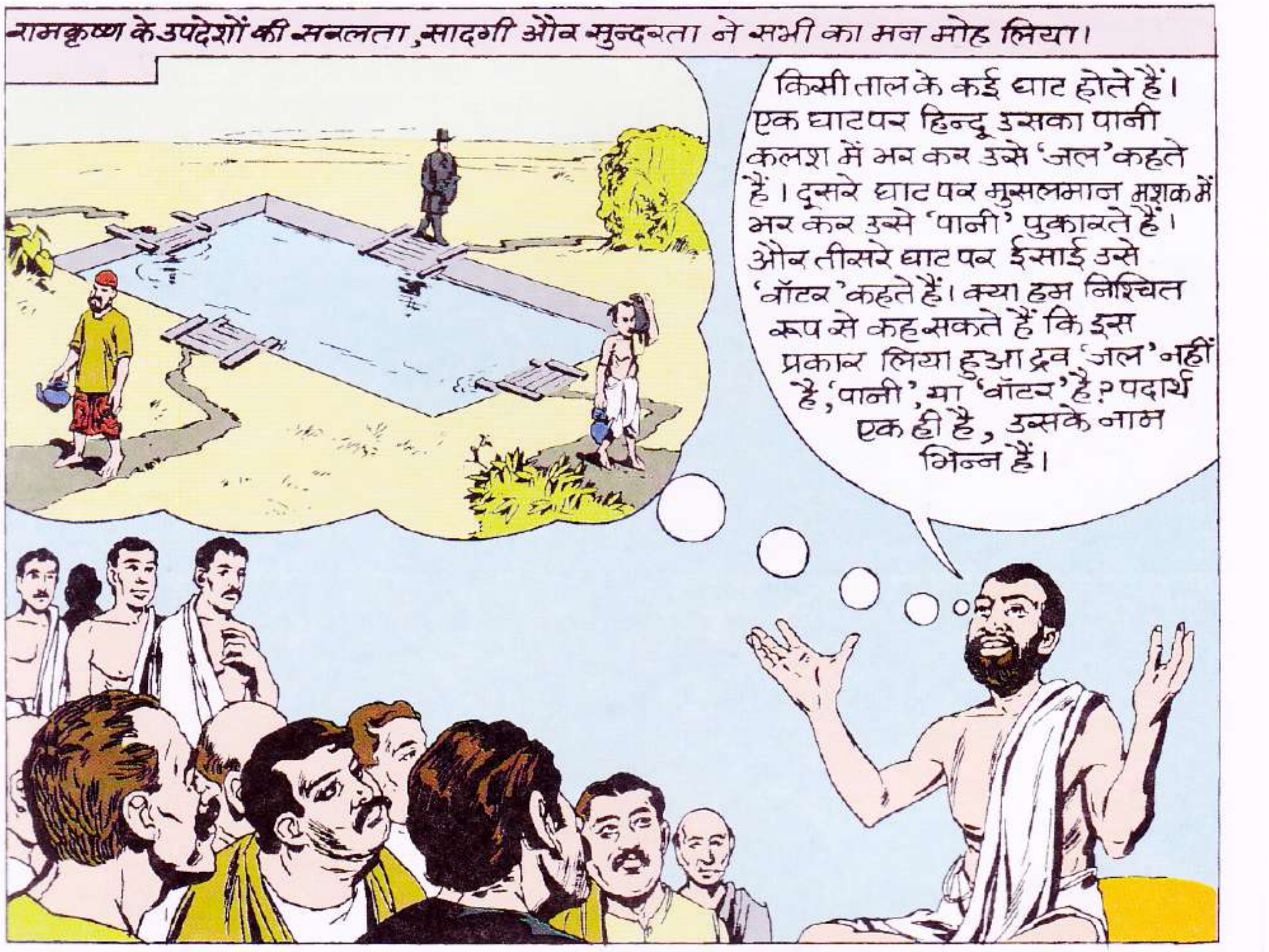
रामकृष्ण के उपदेशों की सरलता, सादगी और सुन्दरता ने सभी का मन मोह लिया।
किसी ताल के कई घाट होते हैं। एक घाट पर हिन्दू उसका पानी कलश में भर कर उसे 'जल' कहते हैं। दूसरे घाट पर मुसलमान मशक में भर कर उसे 'पानी' पुकारते हैं। और तीसरे घाट पर ईसाई उसे 'वॉटर' कहते हैं। क्या हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इस प्रकार लिया हुआ द्रव 'जल' नहीं है, 'पानी', या 'वॉटर' है? पदार्थ एक ही है, उसके नाम भिन्न हैं।

ईश्वर अथाह महासागर है। हम उसकी लहरें हैं। ईश्वर अग्नि है, हम उसकी चिनगारियाँ हैं। हम में से हरेक के भीतर ईश्वर का अंश विद्यमान है।

और तब एक दिन रामकृष्ण बीमार पड़ गये। उनके गले में जानलेवा दर्द उठा। सुप्रसिद्ध चिकित्सक, डॉ. महेंद्रलाल सरकार उन्हें देखने आये।
इनके बेहतर इलाज के लिए इन्हें कलकत्ता ले जाना पड़ेगा। आप वहाँ एक घर किराये पर ले लीजिए।
हाँ, डॉक्टर, ले लेंगे।

शिष्य और भक्त सभी उपचार के लिए आवश्यक धनराशि जुटाने को तत्पर हो गये।
मैं अपना घर रेहन रख दूँगा।
मेरी पत्नी और मैं अपने जेवर गिरवी रख देंगे।
घर का किराया मैं दे दूँगा।
और मैं सबके लिए यथाशक्ति भोजन ले आया करूँगा।
डॉ. सरकार ने दुनिया देखी थी। संतों और चमत्कारों में वे विश्वास नहीं करते थे। वे भी द्रवित हो गये।
रामकृष्ण के प्रति इन लोगों के मन में कितना असीम स्नेह है! वे उनके लिए सब कुछ करने को तैयार हैं।
बाद में _
डॉ. साहब, इलाज के लिए आपका पारिश्रमिक...
नहीं, बेटा। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं भी तुम्हारे गुरु से प्रेम करने लगा हूँ। मैं उनका इलाज मुफ्त में करूँगा।
डॉ. सरकार ने रामकृष्ण को बोलने को मना किया था किन्तु —
उन्हें आने दो, नरेन। ये लोग इतनी दूर-दूर से मुझे सुनने आये हैं। मुझे उनसे बातें करनी हैं।
तब फिर एक दिन रामकृष्ण ने नरेन को बुलाया और अपना हाथ उनके मस्तक पर रखा। एक विद्युत लहर जैसी शक्ति नरेन में समा गयी।
नरेन, मेरे पास जो कुछ है, सब मैं तुम्हें सौंपता हूँ। इन शक्तियों के द्वारा तुम विश्व में महान कार्य कर सकोगे।

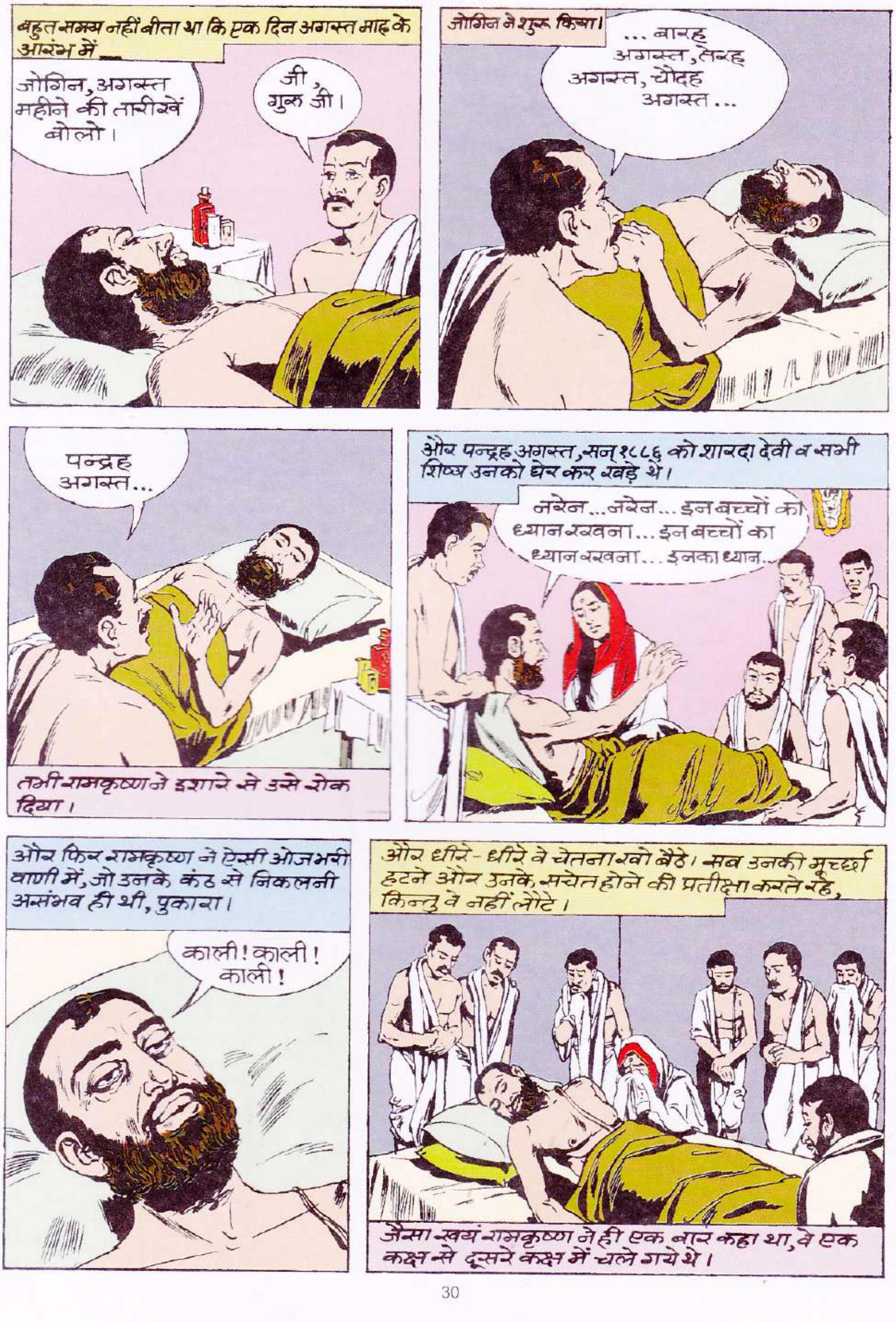
बहुत समय नहीं बीता था कि एक दिन अगस्त माह के आरंभ में _
जोगिन, अगस्त महीने की तारीखें बोलो।
जी, गुरू जी।
जोगिन ने शुरू किया।
... बारह अगस्त, तेरह अगस्त, चौदह अगस्त ...
पन्द्रह अगस्त...
तभी रामकृष्ण ने इशारे से उसे रोक दिया।
और पन्द्रह अगस्त, सन् १८८६ को शारदा देवी व सभी शिष्य उनको घेर कर खड़े थे।
नरेन ...नरेन ... इन बच्चों का ध्यान रखना ... इन बच्चों का ध्यान रखना ... इनका ध्यान...
और फिर रामकृष्ण ने ऐसी ओजभरी वाणी में, जो उनके कंठ से निकलनी असंभव ही थी, पुकारा।
काली! काली! काली!
और धीरे-धीरे वे चेतना खो बैठे। सब उनकी मूर्च्छा हटने और उनके सचेत होने की प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु वे नहीं लौटे।
जैसा स्वयं रामकृष्ण ने ही एक बार कहा था, वे एक कक्ष से दूसरे कक्ष में चले गये थे।

दिव्यदृष्टा

श्री रामकृष्ण

महात्मा गांधी ने लाइफ ऑफ श्री रामकृष्ण नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है: श्री रामकृष्ण का जीवन व्यावहारिक धर्म का आदर्श उदाहरण है। उनके जीवन से प्रेरणा ले कर हम ईश्वर से साक्षात्कार कर सकते हैं। पश्चिम बंगाल के मुसलमान क्रान्तिकारी कवि, स्वर्गीय काजी नजरुल इस्लाम ने श्री रामकृष्ण पर एक बहुत सुन्दर कविता लिखी है, जिसमें उन्होंने श्री रामकृष्ण में सतयुग या स्वर्ग-युग के आरंभ की झलक देखी: सत्य युगेर पुण्य-स्मृति, कलिते आनिले, तुमि तापस....

हे तपस्वी, तुमने इस कलियुग में भी सतयुगकी पावन स्मृति प्रस्तुत की है। फ्रेंच लेखक रोमाँ रोलाँ ने अपनी पुस्तक लाइफ ऑफ रामकृष्ण में उनका परिचय इन शब्दों में दिया है, उनमें तीस करोड व्यक्तियों के दो हजार वर्षों के आध्यात्मिक जीवन का सार निहित है। श्री रामकृष्ण के चरित्र में हम उस विशेषता को देखते हैं जिसे विख्यात दार्शनिक, बर्ट्रेंड रसेल ने वर्तमान मानव के लिए आवश्यक बताया है - ज्ञान का विकसित हो कर विवेक में परिवर्तित हो जाना; अन्यथा मानवीय ज्ञान की वुध्दि केवल दु:ख की वुध्दि बन कर रह जायेगी।

स्वामी रंगनाथानन्द

अमर चित्र कथा के अन्य दिव्यदृष्टा :

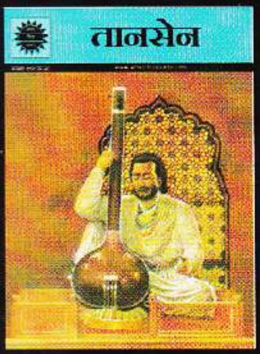

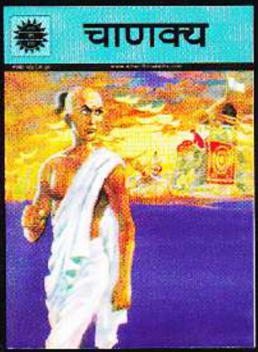

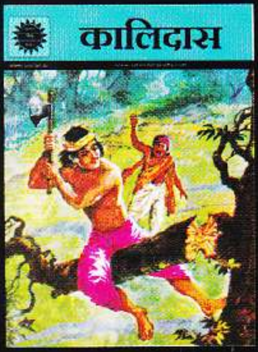

ये भी पढ़ें :

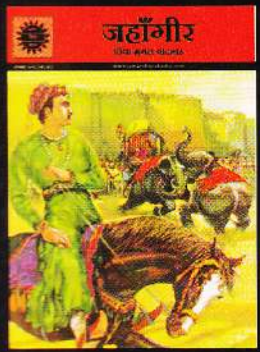

वीरांगना

भारतीय उत्कृष्ट साहित्य

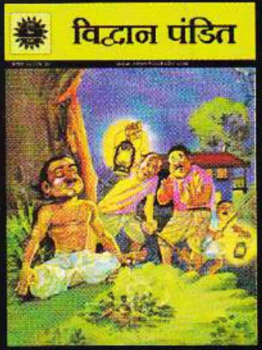

हास-परिहास और दंतकथाएँ

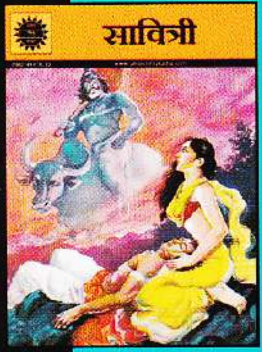

महाकाव्य और पौराणिक कथाएँ

www.amarchitrakatha.
ISBN 978-81-8482-33